वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा

एम.जे.एम.सी. - 8
ग्रामीण एवं पर्यावरण पत्रकारिता
(Rural and Environment Communication)

ग्रामीण एवं पर्यावरण पत्रकारिता-2

पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम
(Master of Journalism & Mass Communication)

ग्रामीण एवं पर्यावरण पत्रकारिता 2

पर्यावरण की अवधारणा एवं स्वरूप
भारत में पर्यावरणीय आन्दोलन

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.जे.एम.सी. – 8

ग्रामीण एवं पर्यावरण पत्रकारिता

पत्रकारिता एवं जनसंचार
स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम

ग्रामीण एवं पर्यावरण पत्रकारिता

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

* **प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा**
  कुलपति
  कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा
  (अध्यक्ष समिति)
* **प्रो. ए. डबल्यू. खान**
  निदेशक (विकास एवं प्रशिक्षण)
  कॉमनवेल्थ सेण्टर ऑफ लर्निंग 1285 ब्राइवे
  वैंकवर (कनाडा)
* **राधेश्याम शर्मा**
  पूर्व-महानिदेशक
  माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
  विश्वविद्यालय, भोपाल(म. प्र.)
* **प्रो. ओ.पी. केजरीवाल**
  निदेशक, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी
  तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली
* **प्रो. ए. के. बनर्जी**
  पूर्व-अध्यक्ष
  पत्रकारिता विभाग
  बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
  वाराणसी
* **प्रो. जे.एस. यादव**
  भारतीय जनसंचार संस्थान
  नई दिल्ली
* **डॉ. भंवर सुराणा**
  ब्यूरो चीफ/ विशेष संवाददाता
  दैनिक हिंदुस्तान
  जयपुर
* **प्रो. रमेश जैन**
  अध्यक्ष-जनसंचार विभाग
  कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा
  (सचिव, समिति)

संयोजक

प्रो. रमेश जैन- अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ-संपादक एवं भाषा-संपादक

पाठ-संपादक
डॉ. महेन्द्र मधुप
संयुक्त निदेशक, प्रशिक्षण और प्रचार
राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड, जयपुर
सचिव, इन्टरनेशनल सोसायटी फॉर एग्रीकल्चरल मार्केटिंग (अहमदाबाद)

भाषा-संपादक
डॉ. विष्णु पंकज
वरिष्ठ साहित्यकार-पत्रकार
जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

* **डॉ. आर.वी. व्यास, कुलपति**
* **डॉ. एच.बी. नन्दवाना, विभागाध्यक्ष**
* **डॉ. पी.के. शर्मा, निदेशक, पा.सा.उ. एवं वि. विभाग**

पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

* योगेन्द्र गोयल
  सहायक उत्पादन अधिकारी

सर्वाधिकार सुरक्षित ! इस पाठ्यक्रम का कोई भी अंश कोटा खुला विश्वविद्यालय/ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना या मिम्योग्राफी(चक्रमुद्) अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करना वर्जित है।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कुलसचिव, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, रावतभाता रोड, कोटा से प्राप्त की जा सकती हैं।

कुलसचिव, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा प्रकाशित

पाठ लेखक

1. प्रो. वहीद अहमद काजी
अध्यक्ष-भारतीय सूचना सेवा आयोग
भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली

2. ईश्वरदेव मिश्र
संपादक-जनवार्ता
मवइया, सारनाथ
वाराणसी

3. डॉ. महेन्द्र भानावत
लोक साहित्य विशेषज्ञ , लोककर्मी
उदयपुर

4. हमीदुल्ला
हिन्दी नाटककार
जयपुर

5. डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ
पूर्व सह आचार्य, हिन्दी विभाग
सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

6. गोपाल गुप्ता
वारिष्ठ जनसंचार कर्मी
नई दिल्ली

7. चिरंजीलाल माथुर
संपादक 'समयकोण'
जयपुर

8. रमेशदत्त शर्मा
निदेशक-कृषि सूचना एवं प्रकाशन निदेशालय
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

9. **अनुपम मिश्र**
निदेशक- पर्यावरण कक्ष
गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

10. शुभ पटवा
वरिष्ठ पत्रकार
भीनासर, बीकानेर

11. रजनी
उप संपादक 'कुरुक्षेत्र' (हिन्दी)
नई दिल्ली

12. डॉ. लक्ष्मीकान्त दाधीच
प्राध्यापक- वनस्पति विभाग
राजकीय महाविद्यालय, कोटा

13. डॉ. महेन्द्र मधुप
संयुक्त निदेशक, प्रशिक्षण और प्रचार
राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड, जयपुर .

14. रामकुमार
स्वतंत्र पत्रकार, लेखक
कोटा

15. डॉ. हुकमचन्द जैन
प्रौढ़ सतत् शिक्षा एवं विस्तार विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

16. प्रो. रमेश जैन
अध्यक्ष जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

17. डॉ. पी.पी. सती
सहायक प्रोफेसर (भूगोल)
शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर
महाविद्यालय शिवपुरी (म.प्र.)

18. के.एस. मेहता
भोपाल

19. डॉ. विष्णु पंकज
वरिष्ठ जनसंचारकर्मी
जयपुर

खंड एवं इकाई परिचय

खंड परिचय

पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम का प्रश्नपत्र अष्ठम 'ग्रामीण एवं पर्यावरण पत्रकारिता' का है। आजादी के 52 वर्ष बाद भी हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक गंभीर समस्याएँ मौजूद है। ग्रामीण आबादी का एक बड़ा भाग आज भी गरीबी की रेखा से जीवन व्यतीत कर रहा है। हमारा किसान आज भी कृषि की पारंपरिक तकनीक को अपनाए हुए हैजिससे उत्पादन नहीं बढ़ रहा है। आबादी बढने से जोतों का विखंडन हो रहा है। गांवों में स्वास्थ्य और शिक्षा की पर्याप्त सुविधाएं सुलभ नहीं है।

पर्यावरण के प्रति भी लोगों में अभी जागरूकता नहीं बढ़ी है। जनसंख्या वृद्धि, विकास और तीव्र औद्योगीकरण के कारण समग्र पर्यावरण क्षय एक प्रमुख समस्या है। पर्यावरणीय आंदोलन भारत में आज भी अनेक राज्यो में चल रहे हैं। राज्य सरकारें और केन्द्रीय सरकार इन आंदोलनों के प्रति उदासीन है। ग्रामीण विकास में सूचना के अधिकार का अपना विशेष महत्व है। दरअसल सूचना के अधिकार की मांग तथा इससे संबद्ध मुद्दे इतने सरल नहीं है, जितने की प्रतीत होते हैं। अभी हाल ही में 26 जनवरी, 2001 को राजस्थान सरकार ने राज्य की जनता को सूचना का अधिकार प्रदान करके पारदर्शी एवं जवाबदेह प्रशासन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है। इन्ही महत्वपूर्ण बिन्दुओं की चर्चा इन अध्यायों में की गयी है।

इकाई परिचय

इकाई-5 'पर्यावरण अवधारणा एवं स्वरूप' की है। इसमें पर्यावरण अर्थ एवं परिभाषा, पर्यावरण के घटक, पर्यावरण अध्ययन परिस्थितिकीय उपागम, पर्यावरण का संगठन, पर्यावरण के स्वरूप, पर्यावरण प्रदूषण और उसके प्रकार, पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरणीय जागरूकता तथा पर्यावरणीय शिक्षा आदि की विवेचना की गयी है। इसके अतिरिक्त पर्यावरणऔर मानव व्यवहार के परस्पर सम्बन्धों के बारे में भी जानकारी दी गयी है।

इकाई-6 'भारत में पर्यावरण एवं पर्यावरणीय समस्याएँ' से संबद्ध हैं। इसमें भारतीय संस्कृति और पर्यावरण, भारतीय परंपरा में पर्यावरण पोषण, भारत में पर्यावरणीय समस्याएँ और समाधान , स्वास्थ्य एवं सफाई की समस्या, वन्यजीव संरक्षण, भारत की पर्यावरणीय वनस्पतिक विविधता आदि प्रश्नो पर प्रकाश डाला गया है।

इकाई-7 'पर्यावरण और जनसंचार' की है। पर्यावरण संरक्षण और प्रबंध के प्रति लोगों में पर्यावरणीय चेतना पैदा करना तथा पर्यावरण के प्रति व्यक्ति को संवेदनशील बनाना जनसंचार माध्यमों का प्रमुख कार्य है। इस संदर्भ में दूरदर्शन एवं आकाशवाणी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं और पर्यावरण के उन्नयन में सहायता कर सकते हैं। इस इकाई में पर्यावरण की अवधारणा, जनसंचार की अवधारणा, पर्यावरण और जनसंचार , पर्यावरणीय संचार के माध्यम, पर्यावरणीय रिपोर्टिंग आदि बिन्दुओं की विस्तृत व्याख्या की गयी है।

'भारत में पर्यावरणीय आंदोलन' इकाई-8 है। दरअसल भारत में पर्यावरणीय आंदोलन के पीछे महिलाओं, वन-वासियों और गरीबों की आवाज रही है जो वनों एवं पर्यावरण के परंपरागत स्रोतों के विनाश से सीधे प्रभावित हुए हैं और जिसने अनेक अस्तित्व को संकट में डाला है। भले ही यह आंदोलन अपने उद्देश्य की पूर्ति में पूर्ण सफल नहीं हुआ हो। इन आंदोलनों ने विकास की सोच को प्रभावित करने एवं देश में पर्यावरण के प्रति जागरूकता तथा चेतना पैदा करने में अहम भूमिका निभाई है। सुंदरलाल बहुगुणा, मेघा पाटकर, चंडी प्रसाद भट्ट, अरुंधति राय, राजेन्द्र सिंह आदि जैसे कई पर्यावरण को समर्पित लोग आगे आए। देश में पर्यावरण संरक्षण के लिए कई स्वयंसेवी संस्थाएं बनी और उन्होने महत्वपूर्ण कार्य किए।

प्रस्तुत इकाई में भारत में पर्यावरणीय आंदोलनो के उद्भव और विकास की विवेचना की गयी है। इन आंदोलनो में चिपको आंदोलन, एपिकों आंदोलन, टिहरी बांध, विष्णु प्रयाग बांध, भोपाल गैस त्रासदी आदि प्रमुख हैं।

इकाई 5 पर्यावरण की अवधारणा एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 पर्यावरण अर्थ एवं परिभाषा

 5.2.1 पर्यावरण का अर्थ

 5.2.2 पर्यावरण की परिभाषा

5.3 पर्यावरण के घटक

 5.3.1 जैविक घटक

 5.3.2 अजैविक घटक

5.4 पर्यावरण अध्ययन: पारिस्थितिक उपागम

5.5 पर्यावरण का संगठन

 5.5.1 भूमण्डल

 5.5.2 वायुमण्डल

 5.5.3 जल मण्डल

 5.5.4 जैव मण्डल

5.6 पर्यावरण के स्वरूप

 5.6.1 भौतिक पर्यावरण

 5.6.2 जैविक पर्यावरण

 5.6.3 सामाजिक पर्यावरण

5.7 पर्यावरण प्रदूषण

5.8 पर्यावरणीय प्रदूषण के प्रकार

 5.8.1 वायु प्रदूषण

 5.8.2 जल प्रदूषण

 5.8.3 मृदा प्रदूषण

 5.8.4 ध्वनि प्रदूषण

 5.8.5 सामाजिक प्रदूषण

5.9 पर्यावरण संरक्षण

5.10 पर्यावरणीय जागरूकता

5.11 पर्यावरणीय शिक्षा

 5.11.1 पर्यावरणीय शिक्षा के उद्देश्य

 5.11.2 पर्यावरणीय शिक्षा की आवश्यकता

 5.11.3 पर्यावरणीय शिक्षा के प्रकार

5.12 सारांश

5.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें
5.14 निबंधात्मक प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य पर्यावरण और उसके विविध स्वरूपों के बारे में जानकारी प्रदान करना है। इस इकाई में आप निम्न बिन्दुओं पर जानकारी प्राप्त करेंगे -

पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषा
पर्यावरण के विभिन्न घटक
पर्यावरण का संगठन
पर्यावरण के विविध स्वरूप
पर्यावरण प्रदूषण और उसके विभिन्न प्रकार
पर्यावरण संरक्षण
पर्यावरण शिक्षा और जागरुकता

इसके अलावा आप पर्यावरण और मानव व्यवहार के परस्पर संबंधों के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। मानव क्रियाएं किस तरह पर्यावरण को प्रदूषित करती हैं, इस संदर्भ में चर्चा की गई है। पर्यावरण के क्षय को रोकने में पर्यावरणीय शिक्षा और जागरूकता की क्या भूमिका हो सकती है? इससे संबंधित जानकारी भी होगी।

5.1 प्रस्तावना

पर्यावरणीय विज्ञान के विभिन्न पक्षों के अध्ययन करने से पूर्व पर्यावरण का स्पष्ट बोध आवश्यक है। शाब्दिक रूप से पर्यावरण का अर्थ किसी घेरे या परिवेश से है। वस्तुत: पर्यावरण एक विशाल एवं जटिल समग्रता है जिसमें जैविक और अजैविक घटकों का समावेश है। जैविक घटकों के अन्तर्गत विभिन्न जीवों की प्रजातियाँ, जनसंख्या, समुदाय और प्रजातंत्र के संगठन के विभिन्न स्तरों का समावेश कर सकते हैं।

पर्यावरण के भौतिक तथा अभौतिक घटकों के मध्य परस्पर संबंध है जो प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से मानव रहित विभिन्न जीवधारियों के व्यवहार और क्रियाओं को प्रभावित करता है तथा उनसे प्रभावित भी होता है। परन्तु मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्यावरण का इस ढंग से दोहन किया है कि आज उसके समक्ष अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं। मानव जनसंख्या में अप्रत्याशित वृद्धि और अन्य विकास जन्य कारणों ने पर्यावरणीय संतुलन पर बड़ा कुठाराघात किया है। इससे जीवन पोषक तंत्रों (Life Support systems) का क्षय हुआ है। विगत सदी में पर्यावरणीय क्षय और प्रदूषण की समस्याओं के प्रति विश्व समुदाय का ध्यान आकृष्ट हुआ। फलत: संयुक्त राष्ट्र द्वारा पर्यावरण के विविध पक्षों पर अन्तराष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय सम्मेलन आयोजित किए गए। पर्यावरणीय समस्याओं के निराकरण हेतु विश्व समुदाय को जागृत करने की दृष्टि से पर्यावरणीय शिक्षा और जागरूकता कार्यक्रमों के क्रियान्वयन ही पहल की गई। इस कार्य में जनसंचार माध्यमों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

विगत कुछ दशकों में, जीवन के लिए संकटदायी पर्यावरणीय घटनाएं सारे विकासशील विश्व पर छा गई हैं। किसानों और भूमिहीनों की बढ़ती संख्या से ग्रामीण क्षेत्रों में दबाव बढ़ रहा है। शहरों में लोगों, कारों और कारखानों की भरमार हो गई है। इन परिस्थितियों में, विकासशील राष्ट्रों को ऐसे विश्व में क्रियाशील रहना होगा, जहां-

1. सर्वाधिक विकासशील और औद्योगिक राष्ट्रों के बीच संसाधनों का अंतराल बढ़ रहा हो।
2. औद्योगिक विश्व कुछ महत्वपूर्ण अंतराष्ट्रीय संस्थाओं की नीति निर्धारण में हावी रहता हो।
3. औद्योगिक विश्व ने पृथ्वी की पारिस्थितिकीय संपदा का अधिकांश भाग पहले से ही काम में ले लिया हो। यह विषमता पृथ्वी की प्रमुख 'पर्यावरणीय' समस्या है और यह ही प्रमुख विकासात्मक' समस्या है।

अनेक विकासशील देशों में अंतराष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध पर्यावरणीय व्यवस्थापन में विशेष समस्याएं उत्पन्न करते हैं। इन विकासशील देशों कृषि, वानिकी, ऊर्जा उत्पादन एवं उत्खनन सकल राष्ट्रीय उत्पादन का कम से कम आधा भाग पैदा करते ही है और सेवा नियोजन व आजीविका का अधिकतर भाग इन्हीं क्षेत्रों में होता है। विशेषतः: कम विकसित देशों में प्राकृतिक संसाधनों का निर्यात उनका प्रमुख आर्थिक आधार है। ऐसे अधिकांश राष्ट्रों को अपने पर्यावरणीय संसाधन आधार को अतिदोहन से बचाने के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारी दबाव सहने पड़ते हैं।

5.2 पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषा

इस सृष्टि में जो कुछ परिलक्षित होता है वह सब पर्यावरण का ही अंग है। पर्यावरण से पृथक किसी जीव या वस्तु की कल्पना नहीं की जा सकती है। पर्यावरण में जहाँ दृश्यमान वस्तुएं विद्यमान है वहीं अनेक तत्व अदृश्य रूप से विद्यमान है। अत: पर्यावरण अति सूक्ष्म और व्यापक है जिससे विभिन्न घटक एक दूसरे से अन्त: संबंधित हैं। पृथ्वी अपने चारों ओर जीवन देने वाले चारों ओर जैसे जल, मिट्टी_,वायु एवं विभिन्न जीवधारियों सहित एक विशाल तंत्र है। यहाँ पर्यावरण के अर्थ सहित अनको परिभाषित करने का प्रयास किया गया है।

5.2.1 पर्यावरण का अर्थ

'पर्यावरण' शब्द का निर्माण परि+आवरण से हुआ है जिसका सामान्य अर्थ है घेरने वाला। हिन्दी में पर्यावरण शब्द अंग्रेजी शब्द इन्वायरानमेंट (Environment) के समानार्थी है जिसकी उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के इन्वायरोनीर (Environir) से हुई है। इसका आशय भी घेरना या ढंकना है। अत: स्पष्ट है कि पर्यावरण हमारे आसपास का एक ऐसा घेरा है जो प्राणी मात्र के जीवन को प्रभावित करता है। वस्तुत: पर्यावरण जैविक एवं अजैविक घटकों का वह समन्वय है जो हमें चारों ओर से ढंके हुए है तथा सभी जीवधारियों की. क्रियाओं और व्यवहारों को प्रभावित करता है। पर्यावरण के अन्तर्गत जीव-जन्तु, वनस्पति, वायु, जल, प्रकाश, ताप, मिट्टी, नदी, पहाड़ आदि सभी अजैविक तथा जैविक घटको का समावेश है। वस्तुत: पर्यावरण के अंतर्गत वह

सब कुछ समाविष्ट है जो पृथ्वी पर दृश्य एवं अदृश्य रूप से विद्यमान है। संक्षेप मे, पर्यावरण का निर्माण उन सभी भौतिक एवं जैविक घटकों से हुआ है जो इस पृथ्वी और इसके चारों ओर विद्यमान है।

5.2.2 पर्यावरण की परिभाषा

पर्यावरण की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। किन्तु विभिन्न पर्यावरणविदों एवं पारस्थितिकीविदों ने इसे अपने- अपने ढंग से परिभाषित किया है।

ई.जे. रास के अनुसार - पर्यावरण कोई भी वह बाहरी शक्ति है जो हमको प्रभावित करती है।'

डिक्शनरी ऑफ इनवायनमेंटल टर्मस (1976) के अनुसार पर्यावरण-'वह क्षेत्र, घेरा या परिस्थितियाँ जिनमें कोई चीज विद्यमान है, जीवधारी (Orgnism) के बाहर प्रत्येक वस्तु। एक जीव या सायवव के पर्यावरण के अन्तर्गत - 1. शुद्ध भौतिक या अजैविक परिवेश जिसमें वह विद्यमान है, जैसे भौगोलिक स्थिति, जलवायुगत दशाओं और भू-स्थल का समावेश है। 2. कार्बनिक या जैविक परिवेश (Milieu) जिसके अन्तर्गत और जीवित कार्बनिक पदार्थ और सभी जीवधारियों, विशेष जनसंख्या जिसका जीवधारी है, सहित किसी क्षेत्र में पौधों एवं जानवरों का समावेश हैं। इन्टरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशियल साइंसेज (1968) के अनुसार - 'पर्यावरण को' "जीवन और एक सावयव (जीव) के विकास को प्रभावित करने वाली सभी बाह्य दशाओं और प्रभावों की समग्रता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।" पार्क (1980) के अनुसार 'पर्यावरण का अर्थ उन दशाओं के योग से होता है, जो मनुष्य को निश्चित समय में निश्चित स्थान पर आवृत करती है''।

पर्यावरण की अवधारणा के सन्दर्भ में कैम्ब्रिज एनासाइक्लोपीडिया (1990) में व्यक्त किया गया, 'किसी स्थान की वे परिस्थितियाँ जिनमें एक जीवधारी रहता है पर्यावरण है। बड़ी संख्या में पर्यावरण के विविध प्रकार (जैसे नगरी पर्यावरण, ट्रापिकल रेन फोरेस्ट पर्यावरण) किसी एक परिभाषा का निर्माण असंभव बना देता है। सामान्य तौर पर भौतिक पर्यावरण किसी भू-भाग (जलवायु, भूमि) की विशेषताओं का वर्णन करता है जो कि मानव प्रभाव द्वारा उत्पन्न परिवर्तनों से अछूता रहता है जबकि भौगोलिक पर्यावरण में भौतिक पर्यावरण के साथ उसमें किसी भी रूपान्तरण (कृषि व्यवस्था, औद्योगीकरण, नगरीयकरण) का समावेश है। जीवधारियों और उनके पर्यावरण के मध्य का सम्बन्ध परिस्थितिकीय के विषय के भाग का निर्माण करता हैं। 'स्पष्ट है कि पर्यावरण की अवधारणा इतनी व्यापक और जटिल है कि पर्यावरणविद इसकी कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं दे सकें।

डगलस व हालैण्ड के अनुसार - 'पर्यावरण शब्द का प्रयोग उन सब बाह्य शक्तियों, प्रभावों तथा दशाओं के सामूहिक रूप से वर्णन करने हेतु किया जाता है जो जीवित प्राणियों (सावयवों) के जीवन, व्यवहार, बुद्धि, विकास और परिपक्तका का प्रभाव डालते हैं।'

'पर्यावरण' शब्द का शब्दकोषीय अर्थ होता है, आस-पास या पड़ौस, मानव जन्तुओं एवं पौधों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करने वाली बाहरी दशाएं, कार्य प्रणाली तथा जीवन-यापन की दशाएं आदि। इस संदर्भ में तीन प्रश्न उठते हैं -

1. क्या वस्तु आवृत्त (घिरा हुआ) है?
2. किसके द्वारा घिरा हुआ है?
3. तथा कहां घिरा हुआ है?

निश्चय ही प्रथम प्रश्न का उत्तर है सामान्य रूप से जीवित वस्तु तथा मुख्य रूप से मानव। इस तरह यदि मनुष्य घिरी हुई वस्तु है तो दूसरे प्रश्न का उत्तर भौतिक पर्यावरण हो जाता है और कहां घिरा हुआ है, प्रश्न का उत्तर-स्थान (धरातल पर) या बसने वाला क्षेत्र है। इस प्रकार किसी स्थान विशेष में मनुष्य के आस-पास भौतिक वस्तुओं (स्थल, जल, मृदा, वायु) का आवरण, जिसके द्वारा मनुष्य घिरा होता है। पर्यावरण कहा जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर पर्यावरण की जो विशेषताएं स्पष्ट होती हैं, वे निम्न हैं -

- पृथ्वी पर पर्यावरण भौतिक एवं जैविक घटकों की पारस्परिक अन्त:क्रिया का परिणाम है।
- पर्यावरण के अन्तर्गत उन सभी बाहय दशाओं और प्रभावों का समावेश है जो किसी जीव धारी के जीवन और विकास को प्रभावित करते हैं।
- पर्यावरण के कुछ घटक दृश्य हैं तो कुछ अदृश्य और उन्हें इन्द्रियों से अनुभूत नहीं किया जा सकता।
- पर्यावरण के निर्माण एवं विनाश में मनुष्य सहित जैवमण्डल के अन्य जीवों की भूमिका सर्वोपरि है किन्तु अब प्राद्यौगिकी के द्वारा मनुष्य पर्यावरणीय क्षय की गति को बढ़ा रहा है।
- पर्यावरण की विविधता तथा जटिलता में जैविक एवं अजैविक घटकों के अतिरिक्त मानव कारक की भी महत्वपूर्ण भूमिका है जिसको नकारा नहीं जा सकता है।
- पृथ्वी पर वर्तमान पर्यावरण लाखों वर्षों के प्राकृतिक परिवर्तन का परिणाम है।
- पृथ्वी केवल मनुष्य के लिए ही नहीं बनी है किंतु मनुष्य ने इसके संसाधनों का दोहन अपने पक्ष में किया है जिसके फलस्वरूप प्राकृतिक संतुलन बिगड़ा है।

5.3 पर्यावरण के घटक

पर्यावरणीय संगठन अत्याधिक जटिल है। पर्यावरण में अनेक घटकों का समावेश है जिन्हें मोटे तौर पर दो श्रेणियों में रख सकते हैं - अजैविक घटक और जैविक घटक। इन घटकों के बारे में आदि काल से ज्ञान था। इन घटकों के अन्तःक्रिया के बारे में भी गहरी समझ थी।

5.3.1 अजैविक घटक

भौतिक या अजैविक घटकों के अन्तर्गत प्रमुख रूप से उन तत्वों का समावेश करते हैं जो निर्जीव हैं। इनके अन्तर्गत मिट्टी, जल, वायु और अन्य जीवधारियों के मृत शरीर आदि मुख्य हैं।

मिट्टी (Soil)- यह पृथ्वी के ऊपरी भाग का धरातल है जो कार्बनिक पदार्थ और जीवित सावयव के साथ दबी चट्टानों के टूटने से बनता है। इसे मृदा कह सकते हैं। मिट्टी में विभिन्न प्रकार के अकाबर्निक लवण एवं कार्बनिक यौगिक के अलावा ग्रेवेल्स (Gravels), ठोस पत्थर का चूर्ण, खनिज पदार्थों के कण एवं मृदा आदि पाई जाती हैं। मिट्टी में सूक्ष्म जीव, पौधों और भूमिगत जन्तु पाए जाते हैं। मिट्टी में अनेक प्रकार के जीवाणु भी पाए जाते हैं जो बहुत उपयोगी होते हैं।

जल (Water)- यह पृथ्वी का लगभग 71 प्रतिशत धरातल को ढके हुए हैं और बहुसंख्यक जीव-जन्तुओं का माध्यम है। यह जीव द्रव का प्रमुख घटक है और जीवधारियों के जीवन का प्राथमिक नियंत्रक भी है।

वायु (Air)- पृथ्वी का वायुमंडल हवा से बना है जिसमें लगभग 79 प्रतिशत नाइट्रोजन, 20 प्रतिशत आक्सीजन एवं 03 प्रतिशत कार्बनडाइआक्साइड के अलावा अल्प मात्रा में जल और विभिन्न प्रकार की निष्क्रिय गैसे पाई जाती हैं। इन गैसों में हीलियम, नियोन, क्रिप्टोन, जिनोन आदि मुख्य हैं। वायु. में जलवाष्प, धूल कण एवं सूक्ष्म जीव भी पाए जाते हैं। जीवधारियों के जीवन में निष्क्रिय गैसों के अलावा वायु के ' अन्य घटक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस तरह भौतिक घटकों से जलवायु का निर्धारण होता है। वस्तुत: जलवायु किसी निश्चित क्षेत्र में पर्यावरण का इकाई 5 औसत है। प्रमुख जलवायुगत कारकों में ताप, आर्द्रता, प्रकाश, वायु, वर्षा और बर्फ आदि मुख्य है। इसके अलावा पर्यावरण की पर्यावरण के भौतिक घटकों में रासायनिक कारक भी पारिस्थितिकी दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। इनमें विभिन्न प्रकार की अवधारणा एवं स्वरूप गैसे (आक्सीजन, कार्बनडाइआक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड) और पोषाहार आदि मुख्य हैं।

5.1.2 जैविक घटक

पर्यावरण के निर्माण में जिस तरह अजैविक घटकों की उपस्थिति महत्वपूर्ण है, उसी तरह जैविक घटकों का भी महत्व है। जैविक घटकों के अन्तर्गत सभी प्रकार के जीवधारियों का समावेश है। इनमें वनस्पति, विषाणु, जीवाणु, जीवधारी आदि शामिल हैं। सभी जीवधारियों के मध्य दो प्रकार के संबंध पाए जाते हैं - अन्त: प्रजातीय और अन्तर-प्रजातीय। इसी तरह सभी जीवधारी अपने पर्यावरण से प्रभावित होते हैं और पर्यावरण को प्रभावित भी करते हैं। पृथ्वी पर विविध प्रकार के जीवन इतनी अधिक संख्या में हैं कि किसी स्थान विशेष में निवास करने वाले जीव का आसपास के दूसरे जीवों तथा वायु, मिट्टी, मौसम आदि से परस्पर पूरकता का संबंध हैं। कोई भी जीव अपने पर्यावरण से पृथक अस्तित्व नहीं रखता है। समस्त प्राणी भोजन के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हरे पेड-पौधों पर निर्भर है। अनेक पादप भी प्राणियों पर निर्भर हैं। इस तरह विभिन्न प्रकार जीवों में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जहाँ प्रतिस्पर्धा है वहीं सहयोग भी है।

किसी जीवधारी (सावयव) के जीवन पर पर्यावरण के प्रभाव को समझने के उद्देश्य से पारिस्थितिकीय कारकों की अन्त: क्रिया समझना आवश्यक है। प्राकृतिक दशाओं में एक समय

विशेष पर किसी जीवधारी का जीवन पारिस्थितिकीय करकों के कुलयोग अर्थात् पर्यावरण द्वारा प्रभावित होता है ना कि किसी एक कारक से। ये सभी प्रकार परस्पर अन्त: सम्बन्धित होते हैं। एक कारण में परिवर्तन या विचलन दूसरे को प्रभावित करता है। उदाहरण के तौर पर ताप में वृद्धि का प्रभाव निश्चित ही आर्द्रता (Humidity) में कमी के रूप में परिलक्षित होता है। इसी तरह प्रकाश की तीव्रता का प्रभाव प्रकाश संश्लेषण की क्रिया (photosynthesis) पर पड़ता है। इसके बदले पर्यावरणीय आर्द्रता भी प्रभावित होती है। अत: एक समय पर किसी जीवधारी के जीवन पर प्रभाव अन्त: सम्बन्धित कारकों के समग्र प्रभाव के बराबर होता है। ऐसी स्थिति में जीवधारी के जीवन पर किसी चिन्हित प्रभाव के बारे में यह कहना कठिन होता है कि कौन सा वैयक्तिक कारक उत्तरदाई है या नहीं।

5.4 पर्यावरणीय अध्ययन के उपागम (Approaches to Environmental Studies)

पर्यावरण के अध्ययन की कई पद्धतियाँ या उपागम, जिन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है -

1. **वानस्पतिक उपागम (Botanical Approach) -** इस उपागम के अन्तर्गत पौधों और जन्तुओं के विद्यमान सम्बन्धों के सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाता है। इस पद्धति का उपयोग प्राय: पादप पारिस्थितिकी एवं पादप भूगोल में किया जाता है।

2. **जन्तुशास्त्रीय उपागम (Zoological Approach) -** इस उपागम में जन्तुओं को प्राथमिकता दी जाती है जबकि पौधों और प्राकृतवास को पर्यावरण का एक भाग माना जाता है।

3. **जैविक उपागम (Boitic Approach) -** यहाँ जैविक से तात्पर्य पौधों और जन्तुओं से हैं। अत: इस उपागम में किसी क्षेत्र विशेष की वनस्पति और जन्तुओं के मध्य पाए जाने वाले सम्बन्धों के अलावा पौधों के मध्य और जन्तुओं के मध्य परस्पर विद्यमान सम्बन्धों को पर्यावरण के संदर्भ में जानने का प्रयास किया जाता है।

4. **प्राकृतवास उपागम (Hebitat Approach) -** यहाँ प्राकृतवास या वह स्थान जहाँ कोई जीव रहता है। उसे केन्द्रीय महत्व दिया जाता है। इस दृष्टि से समुद्री प्राकृतवास, स्वच्छ जलीय प्राकृतवास, भूस्थलीय प्रकृतवास और एस्बुराइन (Estuarine)प्राकृतवास आदि का अध्ययन किया जाता है।

5. **पर्यातंत्र उपागम (Ecosystem APproach) -** इस उपागम में प्राकृतवास पौधों और जन्तुओं को एक एकल गत्यात्मक इकाई (A Single Dynamic Unit) के रूप में माना जाता है। जहाँ उनके मध्य पदार्थ और ऊर्जा का विनियम होता है। उदाहरण के तौर पर तालाब और झीलें आदि एक विशेष पर्यातंत्र का निर्माण करते हैं जिनके संदर्भ में पर्यावरण का अध्ययन किया जाता है।

6. **उत्पादकता उपागम (Productivity Approach) -** इस उपागम में प्राकृतवास और जीवधारियों के मध्य ऊर्जा सम्बन्धी के फलस्वरूप पैदावार या फसलें क्षमता का अध्ययन किया जाता है।

7. **जनसंख्या अध्ययन (Population Studies) -** हॉल ही में पारिस्थितिकी के संदर्भ में जनसंख्या के अध्ययनों का प्रयोग किया जाने लगा है। इस उपागम में समूह सम्बन्धों (Group relation) - पर जोर दिया जाता है।

5.5 पर्यावरण का संगठन

मनुष्य को पर्यावरण और उसके विभिन्न घटकों का ज्ञान बहुत पहले से था। भारतीय प्राचीन ग्रंथों में इन घटकों का व्यापक विवेचन मिलता है। यहां पर्यावरण के भौतिक घटकों को प्राणी मात्र के जीवन का आधार माना गया है और व्यक्त किया गया है - 'क्षिति, जल, पावक गगन समीरा, पच तत्व से रचत शरीरा' अर्थात् श्रम, जल, अग्नि, आकाश और वायु आदि पाँच तत्वों से प्रत्येक प्राणी के शरीर की रचना हुई है। पर्यावरण के अन्तर्गत जैविक और अजैविक घटकों का समन्वय अत्याधिक जटिल है। अत: पर्यावरण का संगठन और अन्त: क्रिया अत्याधिक जटिल है। पर्यावरण के सगठन को समझने के लिए उसके विभिन्न घटक मंडलों को समझना आवश्यक है जिसके अन्तर्गत सौर मंडल, भूमंडल, वायुमंडल, जलमंडल और जैवमंडल का समावेश है।

5.5.1 सौर मंडल

पृथ्वी का सौर मडल से घनिष्ठ संबंध है क्योंकि पृथ्वी की उत्पत्ति सौर मंडल के साथ हुई है। अत: पर्यावरण के एक घटक के रूप में सौर मडल के बारे जानना समीचीन होगा। सौर मडल की उत्पत्ति के बारे में कोई एक मत नहीं है। विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा इस संदर्भ में अपनी-अपनी उपकल्पनायें प्रस्तुत की गई है। पृथ्वी सहित सौर परिवार के अन्य सदस्यों में मंगल, बुध, बृहस्पति, शनि, शुक्र, अरुण, वरुण एवं वीनस हैं। सूर्य पृथ्वी के सबसे नजदीक एक बड़ा तारा है जो पृथ्वी से 148.8 मिलियन किमी. दूर है। प्रत्येक ग्रह सूर्य के चारों ओर अपनी एक निश्चित कक्ष में घूमता है। सूर्य सहित सभी ग्रह एवं उपग्रह मिलकर सौर मंडल का निर्माण करते हैं। सूर्य के सबसे पास मरर्करी है। इसके बाद क्रमश: बुध, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्युन, प्लूटो हैं। पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह चन्द्रमा है जो पृथ्वी से 1.75.000 किमी. दूरी पर है। यह पृथ्वी का एक चक्कर 27.3 दिन में पूर्ण करता है।

सौर मंडल में होने वाले परिवर्तनों का भूमंडल पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सूर्य की सतह पर होने वाली उथल-पुथल के फलस्वरूप पृथ्वी पर आप, तूफान, आगजनी और दुर्घटनाओं में अचानक वृद्धि देखी गई है। इसका कारण शायद सौर ऊर्जा में परिवर्तन एवं विद्युत चुम्बकीय तरंगें हैं। पृथ्वी के वायुमंडल में होने वाले परिवर्तनों से अनेक पर्यावरणीय समस्याएं खड़ी हो रही हैं। जिनमें ओजोन क्षय और हरित भवन प्रभाव मुख्य हैं। इनसे पृथ्वी के पर्यावरण में जो परिवर्तन होंगे वे मनुष्य सहित पूरे जैव मंडल के लिए घातक होंगे।

5.5.2 भूमंडल

पृथ्वी सौर मंडल का एक महत्वपूर्ण सदस्य है। पृथ्वी और उसके चारों ओर जो कुछ है वह भूमंडल हैं। सौरमंडल की तरह पृथ्वी की उत्पत्ति के बारे में विभिन्न वैज्ञानिकों ने अपने-

अपने मत व्यक्त किए किन्तु पृथ्वी की उत्पत्ति के बारे में सभी विद्वान एक मत नहीं हैं। सर्वप्रथम 1755 में जर्मन वैज्ञानिक इमैनुअल कात ने अपनी पुस्तक 'थ्योरी आफ हैवन्स में यह परिकल्पना प्रस्तुत की थी कि प्रारंभ में ब्रह्मांड के एक भाग के रूप में पृथ्वी गैसों तथा धूल कणों का एक विशालकाय बादल था जो एक पहिए की तरह अनवरत घूम रहा था। यही बादल कालान्तर में पृथ्वी के रूप में बदल गया। पृथ्वी की उत्पत्ति के बारे में यह कहा गया है कि यह 10 खरब वर्ष पूर्व सूर्य के अलग हुआ एक गैसीय पिण्ड था जो धीरे- धीरे ठंडा होकर पृथ्वी के रूप में आ सका। भौगोलिक दृष्टि से पृथ्वी सौर परिवार का सबसे महत्वपूर्ण ग्रह है क्योंकि अब तक इसी पर जीवन विद्यमान है

पृथ्वी की परिधि 22,800 किमी. और व्यास लगभग 12,800 किमी. के लगभग है। इसके भौतिक गुणों में गुरुत्वाकर्षण और चुम्बकत्व मुख्य है। पृथ्वी की समग्र संरचना को तीन प्रमुख भागों में बाट सकते हैं - सियाल (Sail), सीमा (Sima)और नीफे (Nife)पृथ्वी की ऊपरी परत अपेक्षाकृत पतली और काफी मूल्यवान है क्योंकि इसी तरह में अपार खनिज सम्पदा भरी पड़ी है। इसे रियॉल कहते हैं। मध्य वाली परत में लोहा, कैल्सियम तथा मैग्नेशियम के सिलिकेट मुख्य रूप से पाए जाते हैं जिसे सीमा कहते हैं। पृथ्वी की अंतिम और तीसरी परत नीफे है जिसमें निकिल तथा लोह तत्व की प्रधानता है जिसके कारण इसमें चुम्बकीय गुण पाया जाता है।

पर्यावरण पर भूमंडलीय कारकों का प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस पृथ्वी के भूस्थलाकृति कारकों में समुद्र तल इकाई 5 पर्यावरण की से ऊँचाई, पर्वतों और घाटियों की दिशा, पर्वतीय ढाल और इनपर आच्छादित वनस्पति आदि का भौगोलिक पर्यावरण अवधारणा एवं निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है। स्वरूप

5.5.3 वायुमंडल

पृथ्वी के चारों ओर विभिन्न प्रकार की गैसों का जो आवरण है वह वायुमंडल कहलाता है। प्राणी मात्र के लिए वायु जीवन का आधार है। वायुमंडल को परिभाषित करते हुए ट्रिवार्था ने लिखा है - 'ठोस एवं द्रव पृथ्वी सैकड़ों मील मोटी गैसीय आवरण से घिरी हुई या परिवेष्ठित है जिसे वायुमंडल कहा जाता है। वायुमडल को पृथ्वी के ठीक ऊपर या पूरे नहीं समझा जाना चाहिए बल्कि इस ग्रह की भूमि और जल की तरह ही एक अभिन्न भाग है। वायु में क्रमश: 78 प्रतिशत नाइट्रोजन और लगभग 21 प्रतिशत आक्सीजन है तथा शेष गैसों में कार्बन-डाइआक्साइड, आर्गन, हाइड्रोजन, हीलियम, नियोन, क्रिप्टोन, जिनोन एंव ओजोन आदि गैसे मुख्य हैं। वायु मंडल में कार्बनडाइआक्साइड की मात्रा लगभग 0.03 प्रतिशत है जो हरे पेड़-पौधों के लिए प्रकाश संश्लेषण हेतु आवश्यक है। वायुमंडल में जल-वाष्प, धूल-कण अन्य गैसे भी पाई जाती हैं। वायुमंडल की भौतिक और रासायनिक संरचना अत्याधिक जटिल है। पृथ्वी के धरातल से वायुमंडल के विभिन्न स्तरों की ऊँचाई का आंकलन निम्नवत पाया गया है -

(क) परिवर्तनमंडल 10-15 किमी (घ) ओजोनमंडल 32-80 किमी.

(ख) समतापमंडल 15-80 किमी (च) आयनमंडल 80- 640 किमी.

(ग) मध्यमतापमंडल 16-85 किमी (ङ) आयतनमंडल 640 से अधिक ऊँचाई तक

वायुमंडल की विभिन्न परतें पर्यावरणीय गतिविधियों के निर्धारण और पर्यावरण को संतुलन बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उदाहरण के तौर पर ओजोन गैस की तरह और आयनमंडल सूर्य की घातक पराबैंगनी किरणों को पूरी तरह पृथ्वी तक नहीं पहुँचने देती है किन्तु ओजोन के क्षय से त्वचा, नेत्र एवं अन्य अंगों के रोगों की संभावना बढ़ने की आशंका है।

5.5.4 जलमंडल

पर्यावरण का एक प्रमुख घटक जलमंडल है जो पृथ्वी के अधिकांश भाग को घेरे हुए हैं। पृथ्वी पर 71 प्रतिशत भूभाग जल से घिरा हुआ है। समस्त स्रोतों से उपलब्ध जल का लगभग 97.3 प्रतिशत भाग समुद्री जल के रूप में है जबकि शेष 2.7 प्रतिशत जल झीलों, हिमनदों, नदियों और भूमिगत जल के रूप में विद्यमान हैं। इसमें से भी पेयजल अर्थात् द्रव रूप में जल की मात्रा मात्र 0.7 प्रतिशत है। जबकि शेष जल पृथ्वी के ध्रुवीय क्षेत्रों और बर्फ रूप में जमा है। वर्षा से प्राप्त जल मुख्य रूप से दो रूपों में संग्रहीत होता है- सतही जल या भूतल जल और भूमिगत या भूजल। सतही जल के रूप में भूमि पर मात्र 0.1 प्रतिशत जल संग्रहीत होता है। पृथ्वी की सतह के ऊपर जल स्रोतों में नदियाँ, झीलें, तालाब, बांध, जल संभर और नाले आदि मुख्य हैं। ऐसा अनुमान है कि पृथ्वी पर पेयजल का भूमिगत जल 0.6 प्रतिशत है। भूमिगत जल एक प्रकार से पृथ्वी के गर्भ में संग्रहीत वर्षा से प्राप्त जल है। भूमिगत जल के प्रमुख स्रोतों में कुएं, झरने, जलकूप एवं जलप्रताप आदि मुख्य है।

5.5.5 जैव मंडल

पृथ्वी पर जैवमंडल का विस्तार सर्वाधिक है क्योंकि जीवन अपने विभिन्न स्वरूपों में भूमि जल तथा वायु मंडलों में विद्यमान है। वस्तुत: पृथ्वी के आसपास समग्र पर्यावरण में पाए जाने वाले विभिन्न जीवधारी जैव मंडल का निर्माण करते हैं। इस तरह से जैव मंडल के अन्तर्गत वायुमंडल, जलमंडल और स्थल मंडल के सभी जीवों का समावेश है। जीवों और उनके पर्यावरण के बीच होने वाले अन्त: समन्धों का अध्ययन पारिस्थितकी के अन्तर्गत किया जाता है। स्पष्ट है कि भौतिक पर्यावरण और जीवधारियों के बीच घनिष्ठ संबंधों का अध्ययन कई प्रकार से किया जा सकता है।

पृथ्वी पर समस्त जीवधारियों को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में रख सकते हैं- पादप या वनस्पति, और जन्तु। वनस्पतियों के अनेक प्रकार हैं जिन्हें प्रमुख रूप से सपुष्पीय पौधे अपुष्पीय पौधों में बाँट सकते हैं। सपुष्पीय पौधों को पुन: आवृत बीजी पौधे और अनावृत या नग्न बीजी पौधों के रूप में बाँटा गया है। इसी तरह पृथ्वी पर पाए जाने वाले समस्त जन्तुओं को बेरीढ वाले या अकशेरूक प्राणी और कशेरुक प्राणियों में बांटा गया है। कशेरुक या रीढ़ वाले प्राणियों को पुन: पांच श्रेणियों में रखा गया है - मत्स्य, उभयचर, सरीसृप, पक्षी एवं स्तनधारी प्राणी।

5.6 पर्यावरण के स्वरूप

जीवधारी अपने पोषण हेतु पूरी तरह अपने पर्यावरण पर निर्भर रहते हैं और उससे अप थक रूप से सम्बन्धित हैं। दूसरे शब्दों में पर्यावरण किसी जीवधारियों के परिवेश को बतलाता है जिसका उसकी गतिविधियों पर प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। इस तरह जीवधारियों और उनके पर्यावरण का सम्बन्ध पारस्परिक होता है।

पर्यावरण में भौतिक या अजैविक (Non living) और जैविक (Biotic) पर्यावरण का समायोंवेश है। भौतिक पर्यावरण के अन्तर्गत माध्यम और जलवायु का समावेश है जो जीवधारियों की क्रियाओं को प्रभावित करती है। जैविक पर्यावरण विभिन्न जीवधारियों के मध्य विद्यमान संबंधों को व्यक्त करता है। अत: जीवधारियों के चारों ओर जीवनदायी घटको का घेरा है। मनुष्य के समग्र पर्यावरणीय तंत्रीय में न केवल प्राकृतिक और जैवीय मंडलों की महत्वपूर्ण भूमिका है बल्कि मानव निर्मित परिवेश भी शामिल है। यहां पर्यावरण की अध्ययन की दृष्टि से पर्यावरण के निम्न स्वरूपों का अध्ययन उल्लेखनीय है-

5.6.1 भौतिक पर्यावरण

भौतिक पर्यावरण के अन्तर्गत इस पृथ्वी पर उपलब्ध सभी प्रकार के अजैविक घटकों का समावेश है जिनमें भूमि, जल, ताप, वायु प्रकाश, अग्नि, ध्वनि एवं अन्य भौतिक तत्वों का समावेश है। इन तत्वों की भूमिका प्राकृतिक संतुलन और जैविक पर्यावरण की गतिविधियों में महत्वपूर्ण है। सृष्टि की विभिन्न गतिविधियों में अजैविक घटकों का योगदान नकारा नहीं जा सकता है।

5.6.2 जैविक पर्यावरण

जैविक पर्यावरण की अन्तर्गत सूक्ष्म जीवों से लेकर वनस्पतियों तथा विभिन्न प्रकार के जन्तुओं का समावेश है। जैविक पर्यावरण एक अत्याधिक जटिल समस्या है। वस्तुत: पृथ्वी पर और उसके चारों ओर विभिन्न प्रकार के जीवधारियों का जो संसार है, वह प्राणीशास्त्री पर्यावरण का निर्माण करता है। मिट्टी, पृथ्वी की सतह, जलाशयों और वायुमंडल में विद्यमान जीवन से बनी इस अखंड संरचना के रूप में जैव मडल को समझा जा सकता है। पौधों और जानवरों के ऐसे समुदाय जो एक बड़े क्षेत्र में फैले हो तो उन्हें जीवोम (Biome) कहा जाता है। पृथ्वी पर अनेक जीवोम है। समस्त जीवधारियों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में रख सकते हैं - वनस्पति 'या पेड़-पौधों और जन्तु।

5.6.3 सामाजिक पर्यावरण

मानव निर्मित सामाजिक सांस्कृतिक पर्यावरण का निर्माण मनुष्य ने अपनी विभिन्न गतिविधियों और आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किया है। प्रारंभ में मनुष्य प्रकृति का एक अंग था किन्तु जैसे-जैसे वह सभ्य होता गया, एक जटिल सामाजिक पर्यावरण का निर्माण भी हुआ। सामाजिक पर्यावरण के अन्तर्गत मनुष्य के सामाजिक जीवन के सभी पक्षों का समावेश है। सामाजिक जीवन में उसके भौतिक परिवेश के साथ-साथ प्रथाओं, परम्पराओं, शिक्षा, संस्कृति,

राजनैतिक व्यवस्था आदि का बड़ा महत्व है। सामाजिक जीवन के ये विभिन्न घटक एक ऐसे परिवेश का निर्माण करते हैं जिसे समग्र रूप से संस्कृति कहा जाता है। इसी अर्थ में हर्षकोविट्ज ने मत व्यक्त किया है कि पर्यावरण का मानव निर्मित भाग संस्कृति है। सामाजिक पर्यावरण को मोटे तौर पर दो भागों में रख सकते हैं -

क. ग्रामीण सामाजिक पर्यावरण

ख. नगरी सामाजिक पर्यावरण

क. ग्रामीण सामाजिक पर्यावरण - प्रारंभ में मनुष्य अन्य जीव जन्तुओं की तरह प्रकृति का एक घटक था जो प्राकृतिक अवस्था में जीवन यापन करता था। पशुपालन और कृषि के विकास के साथ मनुष्य ने घुमक्कड़ जीवन को छोड़कर स्थिर ग्रामीण जीवन प्रारंभ किया। तत्पश्चात् कृषि के विकास के साथ सामाजिक जीवन की अन्य उपयोगी संस्थाओं का विकास हुआ। परिवार, विवाह और सामुदायिक जीवन की अन्य संस्थाओं ने मनुष्यों को सभ्य और सुसंस्कृत जीवन की ओर प्रेरित किया। ग्रामीण सामाजिक पर्यावरण की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें प्रकृति का प्रभुत्व होता है जबकि नगरी जीवन में मनुष्यकृत पर्यावरण का प्रधान्य होता है।

ख. नगरी सामाजिक पर्यावरण - मनुष्य के सभ्य और उन्नत जीवन के विकास के क्रम में नगरी सामाजिक पर्यावरण का स्थान ग्रामीण सामाजिक जीवन के विकास के बाद आता है। नगरीय पर्यावरण मानव के प्रभुत्व, उद्यम और उन्नत सभ्य जीवन का प्रतीक है। नगरीय सामाजिक पर्यावरण में कल-कारखानों, उद्योगों- धंधों, यातायात और संचार के साधनों प्रधान्य होता है जिसमें प्राथमिक सम्बन्धों की अपेक्षा द्वितीयक सम्बन्धों का विस्तार ज्यादा होता है। नगरीय सामाजिक पर्यावरण में पर्यावरणीय क्षय और प्रदूषण की समस्याएं अपेक्षाकृत अधिक व्यापक हैं।

5.7 पर्यावरण प्रदूषण

आज के समय की पर्यावरणीय समस्याओं में सबसे बड़ी समस्या प्रदूषण की है। पर्यावरणीय समस्याओं का प्रत्यक्ष संबंध मनुष्य की विभिन्न क्रियाओं से जुड़ा है। मनुष्य ने अपनी बुनियादी, सामाजिक और विलासितापूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया है। इससे पर्यावरण क्षय और प्रदूषण की समस्याएं दिन प्रतिदिन जटिल होती जा रही हैं। मानव जनसंख्या में हो रही वृद्धि पर्यावरण प्रदूषण का एक मुख्य कारण है। औद्योगिकरण, विकास, नगरीयकरण और बढ़ते यंत्रीकरण ने पर्यावरणीय समस्याओं को न केवल जटिल बना दिया बल्कि पर्यावरण के विभिन्न घटकों को भी प्रदूषित किया है। यातायात साधनों में वृद्धि, कीटनाशकों और रासायनिक खादों के बढ़ते उपयोग, रेडियो धर्मी और औद्योगिक अवशिष्टों से पर्यावरणीय घटक अर्थात जल, मिट्टी, वायु आदि प्रभावित हो रहे हैं। पर्यावरणीय प्रदूषण का प्रभाव मनुष्य सहित जैव मडल के अन्य जीवों को भी प्रभावित कर रहा है।

पर्यावरणीय संरक्षण अधिनियम 1986 के अनुसार पर्यावरण प्रदूषण ने ऐसा कोई ठोस, द्रव्य या गैसीय पदार्थ से आशय है जो ऐसे सान्द्रता में विद्यमान हैं कि पर्यावरण के लिए

हानिकर हो सकता है या हानिकर होना संभव है। अलान गिल्पिन ने पर्यावरण शब्दकोष में प्रदूषण को परिभाषित करते हुए लिखा है - 'अपशिष्ट या पदार्थों के ऐसे निस्तारण, निक्षेपण या संग्रह से पर्यावरण के किसी भाग में भौतिक, ऊष्मीय, प्राणीशस्त्रीय रेडियोधर्मी गुणों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष बदलाव प्रदूषण है। जो पर्यावरण के किसी लाभकारी उपयोग को विपरीत ढंग से प्रभावित करता है। ऐसे स्थिति पैदा करता है जो कि सार्वजनिक स्वास्थ्य सुरक्षा या कल्याण अथवा जानवरों, चिडियों, वन्य जीवन, मत्स्य या जलीय जीवन अथवा पौधों को हानि कर या संभावित रूप से घातक है।'

स्पष्ट है कि पर्यावरण में होने वाले घातक तथा अवाच्छीय परिवर्तन को पर्यावरण प्रदूषण कह सकते हैं। मनुष्य की विकासजन्य क्रियाओं ने विविध प्रकार से पर्यावरण घटकों को प्रदूषित किया है। जिसका प्रभाव समग्र जैव मंडल पर पड़ रहा है। पर्यावरण प्रदूषण के समग्र कारकों को दो वर्गों में रखा जा सकता है। प्राकृतिक प्रदूषण और मनुष्यकृत प्रदूषण।

प्राकृतिक प्रदूषण - प्रकृति द्वारा उत्पन्न ऐसे पदार्थ जो पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं उन्हें प्राकृतिक प्रदूषक कह सकते हैं। इस तरह के पदार्थो में ओजोन, सोडियम क्लोराइट, नाइट्रोजन आक्साइड एवं ज्वालामुखी के विस्फोट से उत्पन्न लावा, जंगली आग, जीवाणु, विषाणु, परागकण एवं विभिन्न प्रकार के रेडियोधर्मी एवं खनिज पदार्थ मुख्य है जो जल, मिट्टी और वायु को प्रदूषित कर देते हैं।

मनुष्यकृत प्रदूषण - वर्तमान में मानव क्रियाएँ पर्यावरणीय प्रदूषण का सर्वाधिक बड़ा स्रोत है। कृषि, उत्खनन, विद्युत उत्पादन, परिवहन तथा यातायात, पशुपालन एवं औद्योगिक उत्पादन आदि के कारण अनेक प्रकार के प्रदूषक उत्पन्न होते हैं। जो पर्यावरणीय घटकों को प्रदूषित कर रहे हैं। विकसित देशों में उपभोगवाद और परमाणु ऊर्जा से उत्पन्न रेडियोधर्मी पदार्थ पर्यावरण के लिये कम घातक नहीं है। इसी तरह निर्धन देशों में अनियंत्रण जनसंख्या वृद्धि पर्यावरण प्रदूषण का एक बड़ा स्रोत है। प्रदूषण चाहे प्राकृतिक हो या मनुष्यकृत उनमें मनुष्य का बड़ा हाथ है।

5.8 पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या बहुत व्यापक है। इसकी कोई क्षेत्रीय या राजनैतिक राष्ट्रीय सीमाएं नहीं हैं। पर्यावरण प्रदूषण के प्रकारों को निम्नवत समझा जा सकता है।

5.8.1 वायु प्रदूषण

मनुष्य के लिए जितना महत्व जल एवं भोजन का है उससे कहीं ज्यादा महत्व शुद्ध वायु का है। प्राकृतिक रूप से वायु प्रदूषण का कारण भले ही धूल, पराकण सूक्ष्म जीव, कोहरा, जंगली आग और ज्वालामुखी से उत्पन्न राख एवं गैसे हों, मनुष्यकृत वायु प्रदूषण आज सर्वाधिक घातक है। वायु प्रदूषण महानगरों और नगरों की एक प्रमुख समस्या है। वायु प्रदूषण के संदर्भ विश्व स्वास्थ्य संगठन ने व्यक्त किया है- 'मनुष्य द्वारा संपन्न क्रियाओं के द्वारा वायु में उन पदार्थों का वायु में संकेन्द्रण है जो स्वास्थ्य, वनस्पति तथा सम्पत्ति घातक प्रभाव का कारण है या उसकी सम्पत्ति के उपभोग में हस्तक्षेप है।' इस कथन से स्पष्ट है कि प्रदूषित

वायु में प्रदूषक पदार्थ घुलमिलकर मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। वायु प्रदूषण की व्यापकता के आधार पर इसे व्यक्तिगत, व्यावसायिक तथा सामुदायिक वायु प्रदूषण में वर्गीकृत कर सकते हैं।

वायु प्रदूषण के स्रोतों में जैवधारियों की जैविक क्रियाओं के अलावा कृषि, परमाणु ऊर्जा तथा औद्योगिक गतिविधियाँ प्रमुख हैं, जिन्हें निम्नवत समझा जा सकता है -

- उष्मा तथा ऊर्जा हेतु ईंधन
- अवशिष्ट पदार्थों का जलाना
- यातायात एवं संचार
- औद्योगिक एवं व्यवसायिक उद्यम

वायु प्रदूषण की रोकथाम के लिए भारत सरकार द्वारा जो वायु प्रदूषण निवारक कानून बनाए गए हैं। उनका कठोरता से क्रियान्वयन करना आवश्यक है। इसके अलावा वायु प्रदूषण के प्रति लोगों में जनचेतना जागृत करना भी जरूरी है। वस्तुत: पर्यावरणीय घटकों जैसे वायु, जल, मिट्टी एवं वन्य जीवन संरक्षण के प्रति एक प्रकार से एकीकृत दृष्टिकोण के विकास पर जोर दिया जाना चाहिए।

वायु प्रदूषण की समस्या नगरों में यातायात के संसाधनों से बढ़ रही है। अत: इन पर नियंत्रण किया जाना चाहिए। कल-कारखानों को नगरों से दूर स्थापित कर कारखानों की चिमनियां अत्याधिक ऊँचाई पर होना चाहिए। धुंआ को कम करने हेतु शोधन यंत्र लगाना, अत्याधिक धुंआ देने वाले वाहनों पर रोक लगाना और भारी वृक्षारोपण आदि ऐसे उपाय है जो वायु प्रदूषण को कम करने में सहायक हो सकते हैं।

5.8.2 जल प्रदूषण

जल सभी जीवधारियों के लिए एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक देन है। किन्तु प्राकृतिक जल में किसी अवांछनीय बाह्य पदार्थ का प्रवेश, जिससे जल की गुणवत्ता में कमी आती हो जल प्रदूषण आता है। जल प्रदूषण को चार श्रेणियों में रख सकते हैं - भौतिक प्रदूषण, रासायनिक प्रदूषण, शरीर क्रियात्मक प्रदूषण और जैवीय प्रदूषण।

जल प्रदूषण के प्रमुख स्रोतों को दो वर्गों में रख सकते हैं - (क) प्राकृतिक (ख) मनुष्यकृत।

क. प्राकृतिक स्रोत - जल प्रदूषण के प्राकृतिक स्रोतों के अन्तर्गत मिट्टी, खनिज पदार्थ, वनस्पति, मृत प्राणियों अवशेष तथा जन्तुओं का मल-मूत्र आदि मुख्य हैं। इसके अलावा विषाक्त पदार्थ जैसे शीशा, पारा, आर्सेनिक, कैडमियम तथा अन्य धातुएं जल को प्रदूषित कर देती हैं। इसी तरह विभिन्न प्रकार के खनिज लवण जल में घुल कर उसे प्रदूषित कर देते हैं। प्राकृतिक रूप से प्रदूषित जल मानव क्रियाओं के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता है।

ख. मनुष्यकृत स्रोत - जब प्राकृतिक जल के स्रोतों में मानव क्रियाओं और गतिविधियों के कारण प्रदूषक पदार्थो की मात्रा बढ जाती है तब जल प्रदूषित हो जाता है। वर्तमान समय में जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिकरण, नगरीकरण, कृषि पशुपालन एवं अन्य विकासकार्यों के कारण

जल प्रदूषण की समस्या बढ़ रही है। वस्तुत: मनुष्य के दारा उत्पन्न घरेलू मल-मूत्र एवं कचरे का विसर्जन वाहित मल, औद्योगिक बहि:स्त्राव, तेल प्रदूषण, रेडियोधर्मी अपशिष्ट एवं कृषि अन्य प्रदूषण ऐसे स्रोत हैं जो प्राकृतिक जल को दूषित कर देते हैं। मनुष्य को उपयोग हेतु अनुपयुक्त होता है।

जल प्रदूषण को रोकने के लिए जन सामान्य में चेतना जागृत की जानी चाहिए। घरेलू जल एवं वाहित मल उपचार के बाद ही नदी, तालाबों या अन्य स्रोतों में विसर्जित किया जाना चाहिए। पेयजल स्रोतों को दूषित होने को रोका जाना -चाहिए। जहाँ तक संभव हो किसी प्रकार का अपशिष्ट या गंदगी को जलाशयों में नहीं मिलने देना चाहिए। जलाशयों के आसपास नहाने-धोने आदि को रोका जाना चाहिए। समय-समय पर जलाशयों में स्थित जलीय पौधे और अन्य गंदगी को निकाल कर सफाई करते रहना चाहिए। जन सामान्य के मध्य जल प्रदूषण के कारणों दुष्प्रभावों तथा रोकथाम के उपायों के बारे में चेतना जागृत की जानी चाहिए।

5.8.3 मृदा प्रदूषण

मृदा पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण घटक है जो एक भूमि की ऊपरी परत है। इस परत में अनेक कार्बनिक और अकार्बनिक पोषक तत्व होते हैं। जनसंख्या वृद्धि, कृषि, औद्योगिक विकास से न केवल वायु एवं जल प्रदूषित हुए बल्कि मृदा प्रदूषण का खतरा बढ़ गया है। मृदा प्रदूषण के लिए उत्तरदायी कारणों में गंदगी, कचरा, राख, अवशिष्ट पदार्थ, जल-मल, औद्योगिक कचरा, उत्खनन अपशिष्ट और कृषि अपशिष्ट आदि मुख्य हैं। रासायनिक कीटनाशकों और खादों ने मृदा प्रदूषण को इस तक बढ़ा दिया है कि इन विषाक्त पदार्थों के अंश खाद्यान्नों, फलों तथा सब्जियों आदि के माध्यम से मानव शरीर में पहुँचते हैं जो स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्याधिक घातक है। इस विषाक्त पदार्थों से न केवल मानव स्वास्थ्य प्रभावित हुआ बल्कि अन्य जीव-जन्तु भी प्रभावित हो रहे हैं।

5.8.4 ध्वनि प्रदूषण

पर्यावरणीय प्रदूषण में ध्वनि प्रदूषण एक मुख्य समस्या बन गई है जिसका कारण मनुष्य द्वारा यांत्रिक विकास है। वर्तमान समय में उद्योग धंधों और तेजी से चलते हुए वाहनों से उत्पन्न ध्वनि मानव स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रही है। इसके अलावा रेडियो, दूरदर्शन, लाउड स्पीकर, सिनेमा, फटाकों एवं बैंड बाजों एवं अन्य ध्वनि उत्पादक यंत्रों से उत्पन्न शोर मनुष्य की मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। इससे मनुष्य की कार्य क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सामान्य रूप से ध्वनि की सीमा 45 डेसीबेल निर्धारित की है जबकि महानगरों 85 से 110 डेसीबेल के बीच ध्वनि तीव्रता पाई गई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा संस्तुत ध्वनि सीमा निम्नवत है -

घर के अन्दर : रात्रि के समय	35 डेसीबेल	उच्च स्तरों पर जागरण बढ़ जाता है
घर के अन्दर : दिन के समय	45 डेसीबेल	उच्च स्तर पर मौखिक सम्प्रेषण में ह्रास
सामुदायिक/नगरी : रात्रि समय	45 डेसीबेल	उच्च स्तर पर नींद आने में कठिनाई

सामुदायिक/नगरी : दिन के समय	55 डेसीबेल	उच्च स्तर पर चिड़चिड़ाहट में वृद्धि
औद्योगिक/व्यावसायिक	75 डेसीबेल	उच्च स्तर पर बहरे होने की संभावना

ऐसा पाया गया है कि 175 डेसीबेल ध्वनि से व्यक्ति की मृत्यु तक हो सकती है। ध्वनि प्रदूषण से एक विशेष प्रकार का वातावरण बनता है जिसमें मनुष्य बैचेनी अनुभव करता है। ध्वनि प्रदूषण पर मानव स्वास्थ्य एवं क्रियाकलापों पर तीन प्रकार से प्रभाव पड़ता है।

क. श्रवण पर प्रभाव - अत्याधिक शोर से व्यक्ति न तो ठीक से सुन पाता है और न बातचीत कर पाता है। कल-कारखानों, मोटर स्टेंड और स्टेशन आदि पर प्राय: ध्वनि प्रदूषण ज्यादा होता है। ऐसे स्थानों पर कार्यरत लोगों की श्रवण क्षमता आंशिक या पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है। 120 डेसीबेल से अधिक शोर होने पर व्यक्ति की श्रवण शक्ति विकृत हो जाती है और 150 डेसीबेल की ध्वनि एक ही बार में व्यक्ति को बेहरा कर सकती है जबकि इससे अधिक ध्वनि में व्यक्ति बेहोश होकर मर भी सकता है।

ख. कार्यकी पर प्रभाव - ऐसा अध्ययन किया गया है कि तीव्र ध्वनि या शोर न केवल व्यक्ति की श्रवण शक्ति पर कुठाराघात करता है बल्कि शरीर के अन्य अंगों और तंत्रों के कार्यों को भी प्रभावित करता है। तीव्र ध्वनि से हृदय,तंत्र का तंत्र तथा पाचन तंत्र की क्रियाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इससे व्यक्ति का रक्त चाप प्रभावित होता है।

ग. व्यवहार पर प्रभाव - ध्वनि का मनुष्य और अन्य जीव-जन्तुओं के व्यवहार पर भी प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक शोर से जहां मानसिक तनाव और अशांति उत्पन्न होती है उससे व्यक्ति का व्यवहार भी प्रभावित होता है। ऐसा कहा जाता है कि "शोर मनुष्य को समय से पूर्व ही वृद्ध कर देता है।"

5.8.5 सामाजिक प्रदूषण - मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जो अपनी विभिन्न अन्त:क्रियाए सामाजिक परिवेश में संपन्न करता है। स्वस्थ सामाजिक पर्यावरण का प्रभाव व्यक्ति के विकास और व्यक्तित्व पर पड़ता है। वस्तुत: समाज सामाजिक संबंधों की व्यवस्था है। जब इस व्यवस्था पर कुठारघात होता है तो सामाजिक प्रदूषण की स्थिति उत्पन्न होती है।

समाज एक परिवर्तनशील, गत्यात्मक और विकासशील अवधारणा है। सामाजिक पर्यावरण के अन्तर्गत सामाजिक प्रथाएं, संस्थाएं समूह, सामाजिक मूल्य और अन्य घटक शामिल है। किन्तु जब इन घटकों में प्रदूषण बढ़ता है तो वह मानव व्यवहार को प्रभावित करता है। प्रदूषित सामाजिक पर्यावरण व्यक्ति और समाज को नकारात्मक ढंग से प्रभावित करता है। अत: समाज के व्यक्ति पर स्वास्थ्य और व्याधिकीय दोनों प्रकार के प्रभाव परिलक्षित होते हैं। सामाजिक प्रदूषण के कारणों में नियमविहीनता, विचलन तथा सामाजिक विघटन आदि मुख्य हैं। समाज में अस्वस्थ्य स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जब बड़ी संख्या में लोग निर्धन, अशिक्षित, बेरोजगार और पिछड़े होते हैं। उपभोक्तावादी जीवन मूल्यों के अलावा औद्योगीकरण एवं नगरीकरण में सामाजिक पर्यावरण प्रदूषित करने में अहम् भूमिका निभाई है। सामाजिक प्रदूषण के कारण स्वास्थ्य सामुदायिक जीवन का पतन हो जाता है। समाज में अपराध, बालअपराध, जुआ, वेश्यावृत्ति, संघर्ष, हिंसा, युद्ध और साम्प्रदायिक दंगों में वृद्धि होना सामाजिक पर्यावरणीय प्रदूषण के कारण और लक्षण दोनों हैं। संक्षेप में, सामाजिक प्रदूषण की स्थिति में

स्वास्थ्य सामाजिक मूल्यों का पतन हो जाता है। शिक्षा एवं सामाजिक जागरूकता से सामाजिक पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है।

5.9 पर्यावरण संरक्षण

पर्यावरण क्षय और प्रदूषण की समस्याएं विश्वव्यापी हो गई हैं। फलत: प्राकृतिक संसाधनों की कमी और प्रदूषण, वन एवं वन्य जीवन का हास, जैव विविधता का विनाश, ओजोन क्षय, भूतापन, हरित भवन प्रभाव और जलवायु परिवर्तन आदि ऐसी समस्या हैं जो किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं रह गई हैं। अत: पर्यावरण क्षय और विनाश को रोकने के लिए पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता पहले से कहीं अब ज्यादा है। औद्योगिक रूप से संपन्न देशों में उच्च रहन-सहन और उपभोगवादी जीवन शैली ने पर्यावरण क्षय को उत्प्रेरित किया है। वही विकासशील देशों में बढ़ती जनसंख्या और निर्धनता इसके लिए कम उत्तरदायी नहीं हैं। ऐसी स्थिति में विकसित और विकासशील दोनों समाजों को पर्यावरण संसाधनो का उपयोग संयमित करने की आवश्यकता है।

व्यापक अर्थ में, पर्यावरण संरक्षण पर्यावरणीय संसाधनों का सम्यक् या मितव्ययतापूर्ण उपयोग है। मनुष्य को अपनी जरूरतें इस ढंग से पूरा करना चाहिए कि पर्यावरणीय संसाधन एकदम नष्ट-भ्रष्ट न हो जाए। अलान गिल्पिन द्वारा संपादित पर्यावरणीय शब्दकोश में पर्यावरण संरक्षण को निम्नवत परिभाषित किया है- पर्यावरण संरक्षण संसाधन प्रबंधन का वह भाग है जिसका संबंध रासायनिक तथा प्राणीशास्त्रीय अपशिष्ट, पदार्थों के निस्तारण और भौतिक प्रभावों (जैसे ध्वनि तथा रेडियोधर्मिता) से है तथा इसका उद्देश्य किसी समुदाय द्वारा माने गए मूल्यवान प्राकृतिक संसाधनों से उन लाभकारी उपयोगों के प्रति हस्तक्षेप, क्षति या विनाश के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करना हैं। अत: पर्यावरणीय संरक्षण को प्राकृतिक संसाधनों के कुशलतापूर्वक या दक्षतम और हितकारी उपयोग के रूप में समझा जा सकता है।

5.10 पर्यावरण जागरूकता

अब पर्यावरण क्षय की समस्या किसी देश या क्षेत्र तक सीमित नहीं रही। जल, जंगल, जमीन और जलवायु की समस्याएं विश्व के सभी देश महसूस कर रहे हैं। प्राकृतिक संसाधनों के विनाश और प्रदूषण से विकसित और विकासशील देश सामान्य रूप से प्रभावित हो रहे हैं। अत: विगत कुछ दशकों में पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास पर अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से गंभीर चिन्तन हु आ। इसी परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय जागरूकता और शिक्षा के महत्व को प्रतिपादित किया गया। पर्यावरण शिक्षा पर संपन्न एक राष्ट्रीय संगोठी (नई दिल्ली 30-31 जुलाई 1979) में पर्यावरण के संबंध में दो बुनियादी तथ्यों को रखा गया -

1. पर्यावरण अविभाज्य है - इसकी कोई भौगोलिक या वैचारिक सीमा नहीं है और इससे भी बढ़कर यह सभी जीवधारियों, मनुष्यों, जन्तुआ और पौधों के लिए सामान्य है।

2. पर्यावरणीय समस्याओं का कोई शुद्ध वैज्ञानिक- प्रौद्योगिकीय हल नहीं है। कोई सार्थक हल आवश्यक रूप से वस्तुओं की प्रकृति विशेष में, विज्ञान और प्रौद्योगिक के क्षेत्र से परे है। इस तरह के हल का मानवीय (या नैतिक) आयाम एक आवश्यक घटक है।

पर्यावरणीय जागरूकता का आशय पर्यावरण के घटकों, प्रक्रियाओं और घटनाओं के बारे में जागरूकता से है। पर्यावरणीय जागरूकता के संदर्भ में पर्यावरणविद निकलास पालुनिन (Nicklas Polunin) का मत है - एक मानवीय प्राणी के लिए अपने पर्यावरण की विवेकपूर्ण समझ उसे बचाने की एक पूर्व शर्त हैं। "इसके अलावा प्रत्येक व्यक्ति को पर्यावरणीय रूप से जागरूक होना इसलिए आवश्यक है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति सूक्ष्म स्तर पर पर्यावरणीय विनाश की संभावनाओं से परिपूर्ण है। यही कारण है कि भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में पर्यावरणीय जागरूकता है। इस संबंध में कहा गया है - "पर्यावरणीय चेतना जागृत करने की सर्वोच्च आवश्यकता है। यह शिशु से लेकर समाज के सभी आयु वर्गों के लिये होना चाहिए। पर्यावरणीय चेतना स्कूलों और महाविद्यालयों में शिक्षण के अन्तर्गत होना चाहिए। यह पक्ष समग्र शैक्षणिक प्रक्रिया में एकीकृत किया जाए। पर्यावरणीय जागरूकता के निम्न आधार हो सकते हैं। जिन्हें सूचना, शिक्षा और संचार (IEC) के संदर्भ में समझा जा सकता है।

5.10.1 पर्यावरणीय सूचना

आज का युग जनसंचार माध्यमों का है। जनसंचार माध्यमों के द्वारा पर्यावरण के प्रति जागरुकता पैदा की जा सकती है। समाज के लोगों में सूचनाओं के द्वारा उनके व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाया जा सकता है। इस दृष्टि से संचार माध्यम अत्यन्त उपयोगी है। पर्यावरणीय सूचनाओं के प्रसारण में परम्परागत तथा मुद्रित संचार माध्यमों के साथ-साथ इलेक्ट्रानिक माध्यम अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। पर्यावरण मंत्रालय द्वारा 1982 में पर्यावरण सूचना प्रणाली का गठन किया गया जिसका उद्देश्य जन सामान्य के लिए पर्यावरण सूचना के संग्रह, भंडारन प्राप्ति तथा प्रसार करना है। देश में इस प्रणाली का पूरा नेटवर्क है जो विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित अपने 21 केन्द्रों के माध्यम से कार्य करता है। इन केन्द्रों को पर्यावरण सूचना प्रणाली केन्द्र कहा जाता है। ये केन्द्र देश के विभिन्न संगठनों तथा संस्थाओं में स्थापित है। सभी केन्द्र पर्यावरणीय क्षेत्रों की प्राथमिकता, पर्यावरण की दृष्टि से समग्र तथा उपर्युक्त प्रौद्योगिक अपशिष्टों के जैविक हास, मरूभूमिकरण, नदी का मुहाना, मैग्रोव, प्रवाल तथा समुद्री झीलों, जनसंचार तथा पर्यावरण, पर्यावरण शिक्षा, ठोस अवशिष्ट पदार्थों के निपटान पशु पारिस्थितिकीय, हिमालय पारिस्थितिकीय आदि प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में स्थापित किए गए हैं।

5.10.2 पर्यावरणीय शिक्षा

विकासशील देशों में पर्यावरणीय समस्याओं का एक बड़ा कारण जनसंख्या वृद्धि, निर्धनता और निम्न जीवन स्तर की समस्याएं तो है ही लेकिन पर्यावरण के प्रति जागरुकता एवं शिक्षा का अभाव, निरक्षरता और अज्ञानता भी कम नहीं है। इन समस्याओं से पर्यावरण प्रदूषण और क्षय को सतत रूप से बल मिल रहा है। जन सामान्य पर्याय साक्षरता से लगभग अनभिज्ञ है जबकि मानव जाति का अस्तित्व पर्यावरणीय संसाधनों के नियोजित उपभोग पर ही टिका है। इस दृष्टि से मनुष्य के जीवन में शुद्ध, वायु, जल, जंगल, जमीन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के महत्व को प्रतिपादित किया जाना चाहिए। विभिन्न मानवीय गतिविधियों से उत्पन्न

पर्यावरणीय प्रदूषण के बारे में चेतना ज्ञान और समझ के विकास में सहायक शिक्षा सामान्य रूप से पर्यावरण शिक्षा है।

5.10.3 पर्यावरण शिक्षा के प्रकार

पर्यावरण शिक्षा को अनौपचारिक, औपचारिक तथा औपचारिकेत्तर रूप से प्रदान किया जा सकता है। जिनका विवरण निम्नवत है -

क. अनौपचारिक रूप से पर्यावरणीय शिक्षा व्यक्ति के परिवार, पड़ौसियों, मित्रों एवं अन्य सहयोगियों के मध्य वैचारिक आदान-प्रदान से संभव है। इसके अलावा प्रभावी संचार माध्यमों के द्वारा व्यक्ति में पर्याय चेतना जागृत की जा सकती है। आकाशवाणी और दूरदर्शन के अलावा विभिन्न पत्र-पत्रिकाएं औपचारिक पर्यावरण शिक्षा के महत्वपूर्ण उपकरण है।

ख. औपचारिक शिक्षा के सबसे बड़े अभिकरण स्कूल, विद्यालय और उच्च शिक्षा संस्थाएं हैं। अत: इनके माध्यम से शिक्षा के विविध स्तरों पर शिक्षार्थियों की रुचि आवश्यकता और ज्ञान के स्तर के अनुसार पर्यावरण पर विभिन्न पाठ्यक्रमों का संचालन किया जा सकता है। इसके अलावा पाठ्योत्तर गतिविधियों का समावेश पर्यावरण के विभिन्न पक्षों पर व्याख्यान संगोष्ठियां, कार्यशालाएं, प्रशिक्षण कार्यक्रम, प्रतियोगिताए, चित्रांकन, प्रशिक्षण कार्यक्रम, पीरस्थितिक शिविर, श्रव्य-दृश्य प्रदर्शन आदि के माध्यम से किया जा सकता है।

ग. शिक्षा का जन सामान्य के मध्य सबसे ज्यादा प्रभावी स्वरूप औपचारिकेत्तर है। राष्ट्रीय सेवा योजना, प्रौढ़ शिक्षा, राष्ट्रीय कैडिट कोर एवं औपचारिकेत्तर शिक्षा से जुड़ी संस्थाओं के माध्यम से पर्यावरणीय जागरुकता कार्यक्रम समाज से वर्ग तक पहुँचाए जा सकते हैं जो वास्तव में पर्याय-साक्षरता के हकदार है। ग्रामीण एवं जनजातीय समुदायों में अनौपचारिक शिक्षा के बाद यही स्वरूप प्रचलित हैं।

पर्यावरण मंत्रालय द्वारा जुलाई, 1986 से एक राष्ट्रीय पर्यावरण चेतना कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इसके अंतर्गत प्रतिवर्ष 19 नवम्बर से 18 दिसम्बर तक राष्ट्रीय पर्यावरण माह का आयोजन किया जाता है। वर्ष 1995-96 में इस अभियान का मुख्य विषय- 'महिला और पर्यावरण' था। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा पर्यावरण पर फिल्म निर्माण और स्कूलों में पर्यावरण क्लब चलाने हेतु वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है। इसके अलावा पर्यावरणीय चेतना जागृति संबंधी कार्यक्रमों के लिए भी मंत्रालय द्वारा वित्तीय सहयोग प्रदान किया जाता है।

5.10.3 पर्यावरणीय संचार

आल्विन टॉफलर (AlvonTofler) ने अपनी पुस्तक 'द थर्ड वेव' (The Thrid Wave) में उल्लेख किया है कि पहली लहर कृषि क्रांति थी, दूसरी लहर औद्योगिक क्रांति थी तथा तीसरी लहर सूचनाकृत समाज के माध्यम से एक नई सभ्यता के बारे में होगी। मानव समाज परिवर्तन की इस देहरी पर बैठा है। प्रौद्योगिकी विकास ने जनसंचार माध्यमों को अत्याधिक सक्षम और विस्तृत बना दिया है। जिससे सूचना संग्रह और हस्तान्तरण में एक नई क्रांति आ

गई है। आल्विन टॉफलर के इन विचारों में तथ्य यह है कि आज का युग सही अर्थों में संचार का युग है।

भारत में सूचना और प्रसारण मंत्रालय के अंतर्गत विभिन्न माध्यमों जैसे आकाशवाणी, दूरदर्शन, क्षेत्रीय प्रचार निदेशालयों, विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय, गीत और नाटक प्रभाग आदि की सहायता से पर्यावरणीय संचार को व्यापक आधार प्रदान किया जा सकता है। स्वयंसेवी संगठनों और शैक्षिक संस्थाओं को भागीदारी से पर्यावरणीय खतरों, प्रदूषण और पर्यावरणीय समस्याओं के संबंध में जानकारी सम्प्रेषित करने में काफी सहायता मिल सकती है। जन सामान्य के बीच पर्यावरणी के प्रति संवेदनशील मुद्दों पर फिल्मों तथा दूरदर्शन कार्यक्रमों के माध्यम से सूचनाओं का सम्प्रेषण अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।

5.11 पर्यावरणीय शिक्षा

पर्यावरणीय शिक्षा पर्यावरण के बारे में ज्ञान, चेतना और समझ विकसित करने की एक प्रक्रिया है। व्यापक अर्थ में पर्यावरणीय शिक्षा का आशय ऐसी शिक्षा से है जो पर्यावरण के विविध पक्षों के बीच अन्त: क्रियात्मक संबंधों का ज्ञान कराती है तथा पर्यावरणीय समस्याओं के एकीकृत बोध और निराकरण के उद्देश्य से व्यक्ति को व्यावहारिक कौशल प्रदान करती है। डॉ. ए. बी. सक्सेना ने पर्यावरण शिक्षा को परिभाषित करते हुए लिखा है- पर्यावरण शिक्षा पर्यावरण संबंधी जानकारी व समझ उत्पन्न करने की प्रक्रिया है। इसका संबंध मानव और उसकी क्रियाओं से है। इसका उद्देश्य पर्यावरण या इसके घटकों के संरक्षण, सुरक्षा तथा संवर्धन हेतु उत्तरदायी गतिविधियों के विकास से भी है।

इसी तथ्य को संयुक्त राज्य अमेरिका के पर्यावरणीय शिक्षा अधिनियम 197० में कहा गया है - 'पर्यावरण शिक्षा का अर्थ उस शैक्षणिक प्रक्रिया से है जो मानव के प्राकृतिक तथा मनुष्यकृत परिवेशों से संबंधित है। इसमें जनसंख्या वृद्धि, प्रदूषण, संसाधनों का विनियोजन एवं क्षय, संरक्षण, यातायात प्रौद्योगिक तथा सम्पूर्ण मानव पर्यावरण के नगरी एवं ग्रामीण नियोजन का संबंध निहित हैं।

5.11.1 पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य

ब्लूम में अपनी पुस्तक 'टेक्सानमी ऑ एजुकेशनल आब्जेक्टिब्ज' में शैक्षिक उद्देश्यों को ज्ञानात्मक उद्देश्य (Cognitive Aims),प्रभावात्मक उद्देश्य (Affective Aims)और क्रियात्मक उद्देश्य (Psychomotor Aims) में विभक्त किया है। पर्यावरणीय शिक्षा के उद्देश्य भी इन उद्देश्यों से भिन्न नहीं है। पर्यावरणीय शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण विभिन्न राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों द्वारा निर्धारित किया गया है। पर्यावरणीय उद्देश्यों में जहां सार्वभौमिक पर्यावरणीय मूल्यों को स्थान दिया है, वहीं राष्ट्रीय पर्यावरणीय नीतियों के अनुरूप भी कुछ मूल्यों को समाविष्ट किया जा रहा है। पर्यावरण शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों में पर्यावरणीय बोध, समझ और जागरुकता का विकास करना है। इससे वे अपने आस-पास के पर्यावरण के बारे में न केवल जानकारी प्राप्त कर सकते हैं बल्कि पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु अपना यथोचित योगदान भी दे सकते हैं। वस्तुत: पर्यावरण शिक्षा का संबंध केवल छात्रों या युवकों से

नहीं है। वर्तमान परिस्थितियों में पर्यावरणीय शिक्षा और पर्याय-साक्षरता (Eco-literacy) की आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को है।

यूनेस्को ने पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में निम्न तथ्यों को प्रस्तुत किया -

1. जागरुकता - समग्र पर्यावरण और इससे जुड़ी समस्याओं के प्रति व्यक्तियों और सामाजिक समूहों में एक जागरुकता और संवेदनशीलता जागृत करने में सहायता करना।

2. ज्ञान - समग्र पर्यावरण और इससे जुड़ी समस्याओं के प्रति मान्यता का उत्तरदायित्व और इसमें योगदान की बुनियादी समझ प्राप्त करने में व्यक्तियों को सामाजिक समूहों की सहायता करना।

3. दृष्टिकोण - पर्यावरण के प्रति व्यक्तियों तथा सामाजिक समूहों द्वारा सामाजिक मूल्य एवं तीव्र भावनाओं को अर्जित करने में सहायता करना तथा इससे संरक्षण और संवर्द्धन में सक्रिय रूप से सहभागिता हेतु अभिप्रेरित करना।

4. कौशल - पर्यावरणीय समस्याओं के निराकरण हेतु लोगों तथा समूहों में कौशल उत्पन्न करने में सहायता करना।

5. पर्यावरणीय योग्यता - पारिस्थितिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सौन्दर्यात्मक तथा शैक्षिक कारकों के सन्दर्भ में पर्यावरणीय उपायों तथा शैक्षिक कार्यक्रमों के मूल्यांकन में लोगों तथा सामाजिक समूहों की सहायता करना।

6. सहभागिता - पर्यावरणीय समस्याओं को हल करने हेतु उचित कार्यवाही सुनिश्चित करने के लिए व्यक्तियों एवं समूहों में उत्तरदायित्व तथा शीघ्र कार्य करने की समझ के विकास में सहायता करना।

5.11.2 पर्यावरणीय शिक्षा की आवश्यकता

आज प्रत्येक व्यक्ति को पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता विविध कारणों से है। वस्तुत: प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा और संस्कारशीलता के अभाव में पर्यावरण विनाश की अनेक संभावनाओं से परिपूर्ण है। वर्तमान समय में पर्यावरणीय क्षय और प्रदूषण की समस्याओं से तब तक नहीं निपटा जा सकता है जब तक कि व्यापक रूप से लोगों को पर्यावरण के प्रति जागरुक नहीं बनाया जाता है। मृदा क्षरण, वनों की कटाई, अवशिष्ट और मल प्रबंधन, वन जीवन का ह्रास, जैविक विविधता का विनाश, बाढ़, तूफान, सूखा एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिये पर्यावरण शिक्षा का महत्व स्पष्ट है। यहां पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता निम्न कारणों से विशेष महत्व रखती है -

पर्यावरणीय प्रदूषण का नियंत्रण
प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण
गैर परम्परागत ऊर्जा के स्रोतों का उपयोग
वृक्षारोपण एवं सामाजिक वानिकी
प्राकृतिक आपदाओं एवं संकटों के निवारण हेतु
पर्यावरणीय कानूनों की जानकारी
सतत् विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु

5.11.3 पर्यावरण शिक्षा के प्रकार

पर्यावरण शिक्षा इतनी व्यापक है कि इसे किसी एक प्रकार से प्रदान नहीं किया जा सकता है। परम्परागत रूप से औपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत पर्यावरणीय शिक्षा का समावेश किया गया है। किन्तु वर्तमान युग में जनसंचार के माध्यमों से इसे अनौपचारिक और औपचारिकेत्तर ढंग से भी प्रदान कर सकते हैं। औपचारिक पर्यावरणीय शिक्षा के अन्तर्गत पर्यावरण से संबंधित विषयवस्तु को अन्य विषयों के साथ एकीकृत करके भी सम्प्रेषित किया जा सकता है और स्वतंत्र विषय के रूप में भी इसके अध्ययन- अध्यापन की व्यवस्था की जा सकती है। शिक्षा के प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर इसका अन्य विषयों के साथ समावेश किया गया है किन्तु उच्च स्तर पर पर्यावरण शिक्षा के अनेक पाठ्यक्रम संचालित हैं।

पर्यावरण शिक्षा का उद्देश्य केवल उच्च शिक्षा प्राप्त विशेषज्ञ तैयार करना है। बल्कि जनसामान्य में पर्यावरणीय चेतना जागृत करना इसका मुख्य उद्देश्य है। जन सामान्य में पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टि उत्पन्न करने में अनौपचारिक पर्यावरण शिक्षा महत्वपूर्ण है। निरक्षर, ग्रामीण और जनजातीय समुदायों में आज भी अनौपचारिक पर्यावरण शिक्षा पीढ़ी दर पीढ़ी प्रदान की जाती है। विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों, पेड़-पौधों, जड़ी-बूटियों, वन्य जीव जन्तुओं, को पहचाने और जलवायु परिवर्तनों का ज्ञान आदिवासी समुदायों में प्रौढ़ व्यक्ति अपने नई पीढ़ी को प्रदान करते हैं। अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से जनसामान्य पर्यावरणीय चेतना जागृत करने में रेडियो, दूरदर्शन एवं जनसंचार के अन्य माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में परम्परागत लोक माध्यम पर्यावरण शिक्षा प्रदान करने में सर्वाधिक प्रभावशाली है।

औपचारिकेत्तर पर्यावरण शिक्षा वर्तमान परिस्थितियों में सर्वाधिक प्रभावी स्वरूप है। औपचारिकेत्तर शिक्षा प्रदान करने के अनेक अभिकरण हैं जिनमें औपचारिकेत्तर शिक्षा केन्द्र, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र, संग्रहालय, पुस्तकालय, पर्या शिविर और सांस्कृतिक संस्थाए आदि मुख्य हैं।

5.12 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पर्यावरण उन समस्त बाह्य दिशाओं का योग है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष छप से किसी जीवधारी की गति और विकास को प्रभावित करता है। इसमें सभी प्रकार जैविक और अजैविक घटको का समावेश है। इसलिये कहा गया है - पर्यावरण किसी स्थान के भौतिक एवं जैविक प्रभाव का योग है। पर्यावरण क्षय, प्रदूषण प्राकृतिक संसाधनों का बढ़ता विनाश एवं पर्यावरणीय संकटों के कारण विश्व समुदाय का चिंतित होना स्वाभाविक है यही कारण है की पर्यावरणीय जागरुकता और शिक्षा के सभी स्तरों पर प्रयास किए जा रहे हैं। भारत में वैकासिक गतिविधियों और जनसंख्या वृद्धि के कारण पर्यावरण संरक्षण और संवर्द्धन के प्रति चेतना जागृत कराना पहले की अपेक्षा अब ज्यादा आवश्यक है। अत: इस दिशा मैं नियोजित प्रयास करने की आवश्यकता है।

पर्यावरणीय जागरूकता और समझ उत्पन्न करने की प्रक्रिया पर्यावरणीय शिक्षा कह सकते हैं। पर्यावरणीय शिक्षा के मूल उद्देश्य मैं स्वीकार किया गया है कि पर्यावरण उसकी को उसकी समग्रता में देखना होगा और पर्यावरण शिक्षा के विविध स्वरूपों को अपनाकर पर्यावरण

शिक्षा को व्यापक बनाना होगा। अनौपचारिक रुप से भारत में पर्यावरण शिक्षा प्रचलित रही है लेकिन वर्तमान युग औपचारिक और औपचारिकेत्तर शिक्षा का है। इसलिए इस दृष्टि से पर्यावरण शिक्षा के विकास पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है। दूसरे सतत विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने की दृष्टि से महती आवश्यकता है। इस संदर्भ में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण नीतियों को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण शिक्षा और जागरुकता के प्रयास किए जाने चाहिए।

5.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. पर्यावरण- संचार, शिक्षा और प्रबंधन (2000): एच. सी. जैन
2. पर्यावरण अध्ययन (1995): साविन्द्र सिंह
3. पर्यावरण तथा प्रदूषण (1990). अरूण रघुवंशी एवं चन्दलेखा रघुवंशी
4. इनवायरान्मेंट पालुशन एण्ड हैल्थ प्रोबेलेम्स (1990) रईस अख्तर
5. पर्यावरण अध्ययन (1993): टी. बी. सिंह
6. अपना पर्यावरण (1990): एम. के. गोयल
7. पर्यावरण भूगोल (1991): आर. के. चौरसिया
8. इन्वायरान्मेंट मैनेजमेंट इन इंडिया वाल्यूम 1 एवं ii (1987): आर. के. सप्रू
9. पर्यावरण और कानून-विश्वम्भर प्रसाद सती
10. वार्षिक रिपोर्ट 1999-2000 पर्यावरण और वन मंत्रालय, भारत सरकार

5.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषा समझाते हुए उसके विभिन्न घटकों पर प्रकाश डालिए?
2. पर्यावरण के संगठन से क्या तात्पर्य है? पर्यावरण संगठन में भागीदार विभिन्न मंडलों का वर्णन कीजिए?
3. पर्यावरण की अवधारणा स्पष्ट कीजिए? पर्यावरण संरक्षण के विविध उपाय बताइए?
4. पर्यावरण को परिभाषित कीजिए। इसके विविध स्वरूपों के बारे में विवेचना कीजिए?
5. सामाजिक पर्यावरण से क्या तात्पर्य है? सामाजिक पर्यावरण के स्वरूपों का विवेचन कीजिए।
6. पर्यावरण संरक्षण में पर्यावरणीय शिक्षा एवं जागरुकता के महत्व का प्रतिपादन कीजिए?
7. पर्यावरणीय शिक्षा किसे कहते हैं? इसकी आवश्यकता बताते हुए इसके मूल उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।
8. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए

   अ. पर्यावरण प्रदूषण

   ब. पर्यावरण जागरुकता

   स. पर्यावरणीय संचार

इकाई 6 भारत में पर्यावरण एवं पर्यावरणीय समस्याएं (Envirment in India and its Environmental Problems)

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 भारतीय संस्कृति और पर्यावरण

6.3.1 वैज्ञानिक एवं व्यापक सोच

6.3.2 पर्यावरण के लिए धार्मिक आधार भी

6.3.3 पंचतत्व और पर्यावरण

6.3.4 प्रकृति एवं पर्यावरण के सम्मान की परम्परा

6.4 भारतीय परम्परा में पर्यावरण पोषण

6.5 भारत में पर्यावरणीय समस्याएं और समाधान

6.5.1 जल प्रदूषण

6.5.2 वायु प्रदूषण

6.5.3 भूमि का क्षय या प्रदूषण

6.6 स्वास्थ्य एवं सफाई की समस्या

6.7 वन्यजीव संरक्षण

6.7.1 अदालतों का दखल

6.7.2 संरक्षित क्षेत्र

6.8 भारत की पर्यावरणीय वनस्पति विविधता

6.9 सारांश

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

भारत देश विविधताओं, विफलताओं से युक्त है। इन विविधताओं में इस देश की गरिमा, गौरव और एकरूपता छिपी हुई है। विश्व का यह अनुपम छटा वाला देश है। जहां कटीली झाड़ीयुक्त्त थार का मरुस्थल, आसाम के सदा बहार वन, समुद्री दल-दल, सुन्दर वन, वृहदाकार हाथी जैसे जीव-जन्तु, सर्दी-गर्मी-वर्षा-शरद-बसंत आदि ऋतुओं का परिचालन, काँपीयुक्त मिट्टी के गंगा-यमुना के मैदान और विश्व की सर्वोत्तम पर्वत श्रृंखला हिमालय तथा प्राचीनतम पर्वत श्रृंखलाओं में से एक अरावली पाई जाती है। इसी प्रकार नाना प्रकार के पक्षी एवं मानव

समुदाय अपनी-अपनी विशिष्टता एवं विविधता लिए हुए हैं। प्रस्तुत इकाई में भारत में पर्यावरण एवं पर्यावरणीय समस्याओं को रेखांकित किया गया है।

- इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप यह जान सकेंगे कि भारतीय परम्परा और संस्कृति में पर्यावरण की क्या अवधारणा रही है।
- आप यह भी बता सकेंगे कि भारतीय चिन्तन में पर्यावरण का स्वरूप पश्चिमी पर्यावरणीय धारणा से किस प्रकार भिन्न है ?
- आप यह भी जान सकेंगे कि पर्यावरण को जीवन से अलग करने या पर्यावरणीय अवहेलना के परिणाम कितने घातक सिद्ध हो रहे है।
- पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्द्धन के प्रति उदासीनता के कारण आज देश के समक्ष क्या पर्यावरणीय समस्याऐं पर्यावरण उत्पन्न हो गई हैं?
- वर्तमान पर्यावरणीय समस्याओं के निदान में पर्यावरण से सम्बन्धित भारतीय परम्पराएं किस प्रकार हमारी सहायता कर सकती हैं? इसकी विवेचना इस इकाई में आपको मिलेगी।
- भारतीय संस्कृति में जो पर्यावरणीय चिन्तन है। आज भी प्रासंगिक हो सकता है या नहीं? इस पर भी प्रकाश डाला गया है।
- आप भारत में पर्यावरण एवं पर्यावरणीय समस्याओं से अच्छी तरह परिचित हो जाएंगे।

6.2 प्रस्तावना

भारतीय जीवनशैली, परम्परा और संस्कृति का उदय, विकास और पोषण प्रकृति और पर्यावरण के स्वरूप एवं समृद्ध वातावरण में हुआ। भारतीय मनीषियों ने सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानवीय जीवन एवं संरचना की प्रकृति एवं शुद्ध पर्यावरण में समरसता की परिकल्पना की और पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्द्धन पर विशेष बल दिया। प्रकृति और पर्यावरण को जीवन का अभिन्न अंग माना। समाज और व्यक्ति के संस्कारों में प्रकृति की पूजा और समादर का भाव पुष्ट किया।

भारतीय ग्रंथों में भी जहाँ प्रकृति के महत्व की चर्चा आई है, प्रकृति, प्राणीभाव एवं वनस्पतियों आदि की रक्षा और संवर्द्धन को परमपवित्र धार्मिक कार्य माना जाता है। प्रकृति ने न केवल मानव जीवन के अस्तित्व को आधार दिया है, बल्कि उसके पोषण एवं पालन का अनन्त भंडार भी दिया है। यही कारण है कि भारतीय परम्परा में प्रकृति की पूजा और सम्मान करना, उनके परोपकार के लिए आभार व्यक्त करना माना गया है। यह पर्यावरण और प्रकृति की पूजा हमारी सांस्कृतिक आस्था का अंग है। इसी सांस्कृतिक परम्परा और विचार को समझकर भारत में लोगों ने पर्यावरण आन्दोलन प्रारम्भ किए। भारतीय वेदों, पुराणों और उपनिषदों की परम्पराओं में जो पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है और साहित्यिक कल्पनाओं ने जिसे प्रतीकों और मुहावरों से समृद्ध किया है, उससे मनुष्यों एवं प्रकृति के बीच सम्प्रेषण एवं सम्बन्ध स्थापित हुआ है।

भारतीय पर्यावरणविदों का मत है कि एशिया की संस्कृतियों के लिए वनों या जंगलों ने गुरू की भूमिका निभाई है। इन वनों का ही यह सन्देश है कि विविधता में एकता के धागे है और प्रकृति में ही नवीनता और निरन्तर पुष्टता बनाए रखने की क्षमता छिपी हुई है। लेकिन

पश्चिमी तर्ज पर विकास कार्यों, आबादी में तेज गति से वृद्धि होने एवं नगरीयकरण की प्रकृतियों ने मनुष्य और प्रकृति एवं पर्यावरण के साथ चले आ रहे अटटू सांस्कृतिक सम्बन्धों एवं धागों को छिन्न- भिन्न कर दिया और वह प्रकृति की परवाह किए बिना उसका दोहन करने लगा। परिणाम यह हुआ कि प्रकृति और पर्यावरणीय सन्तुलन जो कि मानव अस्तित्व के लिए एक अनिवार्यता है, वह गड़बड़ा गया। अनेक प्रकार के प्रदूषण एवं समस्याओं के खतरे मंडराने लगे। इन खतरों ने हमारी परम्पराओं की ओर हमें फिर सोचने को विवश किया है।

6.3 भारतीय संस्कृति और पर्यावरण

भारतीय संस्कृति में मानव का प्रकृति के प्रति सदैव से ही मातृभाव रहा है। प्राचीनकाल में ऋषियों एवं मुनियों के आश्रम ज्ञान एवं साधना के केन्द्र थे। जो वनों के निर्मल एवं स्वच्छ पर्यावरण में स्थित थे। यही महर्षियों ने अपने शिष्यों के साथ रहकर विश्व के भौतिक-आध्यात्मिक तथ्यों का चिंतन करते हुए एक जीवन पद्धति का विकास किया। उनकी धारणा थी कि सभी चर- अचर तत्वों में जीवन है। उनके प्रति हमारा दृष्टिकोण आदर्श, आत्मीय एवं संतुलित रहना चाहिए। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में पीपल, तुलसी, गंगा एवं पर्वतों की पूजा की जाती है। पर्यावरण के प्रमुख तत्वों यथा-पृथ्वी एवं नदी (अजैव) और गाय तथा तुलसी (जैव) आदि के प्रति भारतीयों के हृदय में सामान्यत: आत्मीत्यता, श्रद्धा व मातृभाव पाया जाता है।

भारत, मलेशिया, इन्डोनेशिया जैसे देशों की संस्कृतियों में हरित आन्दोलन एशिया के वनों, मैदानों और नदियों से उपजा है। भारत को वनों एवं अरण्य-संस्कृति होने का गर्व रहा है। भारत में ज्ञान प्राप्त करने के स्रोत अरण्य या वन ही रहे हैं जहां अनेकों ऋषि मुनियों ने तपस्या, चिन्तन और अनुभव पर भारतीय सांस्कृतिक जीवन को आधार दिया। इन मनीषियों के ज्ञान और प्राचीन नीतियों का जिन ग्रन्थों में भंडार है, उन्हें अरण्यका कहा गया है। वनों के साथ तादात्म्य, प्रकृति और पर्यावरण के साथ उनके संबंधों और संवाद से उत्पन्न सांस्कृतिक धारा निरन्तर पुष्ट होती गई और भारतीय साहित्यकारों जैसे कालिदास महात्मा गांधी, रविन्द्रनाथ टैगोर, सुमित्रानंदन पंत जैसे महापुरुषों ने प्रकृति को एक गुरु के रूप में प्रतिपादित किया। प्रकृति और पर्यावरण का आदर्श समाज के, समक्ष रखते हुए मनुष्य, प्रकृति और पर्यावरण के बीच सामंजस्य के संबंधों की परम्परा को पुष्ट किया।

'वर्षा पुराण' या 'अग्नि पुरान' जैसे प्राचीन ग्रन्थों पर दृष्टि डालें तो यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार भारतीय मनीषियों ने प्रकृति और पर्यावरण के विभिन्न स्वरूपों को समझने, इनकी मानवता के परोपकार के लिए ही जाने वाली सुविधाएं एवं सामग्री के प्रति किस प्रकार कृतज्ञता एवं सम्मान प्रगट किया है। संस्कृत ग्रन्थों की इस प्राचीन परम्परा के कुछेक उदाहरण ही यह स्पष्ट करने में सक्षम है कि भारतीय सांस्कृतिक विरासत एवं पौराणिक साहित्य में वृक्षों और पर्यावरण के संरक्षण एवं पोषण को कितना ऊंचा स्थान दिया गया था।

इन शास्त्रों में यहाँ तक कहा गया है कि जो व्यक्ति ऐसे छायादार वृक्ष लगाता है जो पुष्प और फल भी दे और जीवित प्राणियों की सुधारपूर्ति करे तो ऐसे व्यक्ति का जीवन सार्थक होता है और वह मोक्ष प्राप्त करता है। वृक्षारोपण की महिमा यहाँ तक गाई गई है कि जो

व्यक्ति छाया, पुष्प और फल देने वाले तीस वृक्ष लगाता है, वह कभी नरक में नहीं जाता। यही नहीं पर्यावरण के पोषण एवं समृद्धि को धर्म का अंग मानते हुए कहा गया है कि देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर, नाग, यक्ष और पशुपक्षी, मनुष्य आदि सभी वृक्षों के नीचे शरण लेते हैं।

पर्यावरण के सन्तुलन के लिए वृक्षारोपण एवं उपयोगिता के अलावा मनुष्य को प्रेरित करने के लिए सम्बन्धित पुष्प और फलों के पौधों को लगाने और पोषण करने वाली के लिए तो यह कहा गया है कि ऐसे लोगों के जीवन में समृद्धि आती है और उनकी सारी इच्छाएं पूर्ण होती है। इसलिए यह कहा गया है कि जो लोग अपने जीवन में खुशहाली और परिवार की समृद्धि चाहते हैं, उन्हें वृक्षों को अपना पुत्र मानकर उनका पालन पोषण करना चाहिए। वृक्षों द्वारा लोगों को छाया और आश्रय देने के अलावा पक्षियों को घौंसला, विभिन्न प्रकार औषधियां भी इनके पत्तों, जड़ों और तने से मिलती हैं। यही कारण है कि इतने उपयोगी वृक्षों को जो जीवनदाई भी है और घरा की शोभा भी, इनको काटने वालों के लिए शास्त्रों में तो कहा गया है कि ऐसे लोग घोर नरक में जाते हैं। धरती, जिसको प्रदूषित कर लोग स्वयं के लिए अस्वस्थता और विष-बीज बोते हैं, उसकी तो अत्यन्त निन्दा की गई है। हे धरती, है पृथ्वी, तुम हमें नाना प्रकार की समृद्धि प्रदान करती हो, तुम बहुत शीतल हो, तुम परोपकार की जननी हो और समस्त प्राणियों के अस्तित्व को बनाए रखने वाली हो! इसलिए तुम्हें प्रणाम! इसलिए सदा धरती को नमन करो!'

भारतीय सभ्यता का विकास गंगा और कावेरी तथा नर्मदा और ब्रह्मपुत्र के किनारों पर हुआ है। गंगा नदी के उद्गम से सम्बन्धित भारत की पौराणिक गाथायें भी जलचक्र या पारिस्थितिकीय प्रक्रिया या पर्यावरणीय की प्रक्रियाओं का संकेत देती है। कहा गया है कि हिमालय जैसे विशाल पर्वत की श्रृंखलाओं को पार करती गंगा जैसी गर्जती धाराओं को धरती सहन नहीं कर पाती, इसलिए शंकर भगवान ने उसे अपनी जटाओं में धारण किया ताकि वह धरती पर संयम के साथ धाराओं में बंटकर उतर सके। तात्पर्य यह है कि पर्वतमालाओं से धरती पर यदि शिव की जटाओं की तरह जंगल न होते तो नंगी धरती पर ये नदियां अबोध गति से बहकर तबाही मचा देती। इस प्रकार वृक्षों एवं वनस्पतियों के धरती पर अनेक उपयोग और प्रयोजन हैं।

रविन्द्र नाथ टैगोर ने एक बार कहा कि 'पश्चिमी की सभ्यता ईंटों, लोहे और लकड़ी से बनी है और भारत की इस सभ्यता की जड़ें वनों में जमी हुई है। भारतीय सभ्यता के सर्वश्रेठ विचार वहाँ से उत्पन्न हुए जहां मनुष्य वृक्षों, नदियों एवं झीलों के पास भीड़ से दूर प्रकृति और पर्यावरण के भीतर अपनी आत्मा को विचरण करवाता था'।

भारत में वन विनाश के खिलाफ जब 1970 के दशक में गढ़वाल में 'चिपको आन्दोलन' चला तो वहां महिलाओं के लोक गीतों में भारत की संस्कृति के आधार घने जंगलों, वृक्षों, फूलों, पहाड़ी ढलानों की अनुगूंज सुनाई दी। वर्षा को आमंत्रण और वृक्षों से जल बरसाने की अनुनय की गई है। इसी प्रकार वर्षा, पर्वतों, वनों, धरती और सागर के बीच जो एक सम्बन्ध है और यह पर्यावरणीय-चक्र है, जल या बाढ़-नियन्त्रण का, उस भारतीय मौलिक विचार की परिकल्पना की गई है। पर्यावरण के सन्दर्भ में जिन वैज्ञानिक सत्य एवं तथ्य की आधुनिक

पर्यावरणीय प्रयासों में चर्चा की जाती है, उसका चिन्तन भारत की प्राचीन परम्परा और संस्कृति ने बहुत पौराणिक समय से ही करना प्रारम्भ कर दिया था। भारतीय दर्शन एवं पौराणिक परम्परा में यह माना गया है कि हर जीवित प्राणी या जीव पंचभूतों या मौलिक पांच तत्वों से निर्मित हुआ है। ये हैं- आकाश, वायु, अग्नि, जल और मिट्टी। इन पांच प्राकृतिक तत्वों से निर्मित जीव प्रकृति या पारिस्थितिकी का अंग है।

6.3.1 वैज्ञानिक एवं व्यापक सोच

भारतीय दर्शन और परम्परा में प्रकृति और पर्यावरण के बारे में एक वैज्ञानिक एवं व्यापक सोच की संरचना की यह निष्कर्ष निकाला गया कि सम्पूर्ण जीवित संसार, चाहे घास, वनस्पतियां, वन, नदियां, सागर, पर्वत, पशु, पक्षी, मानव आदि जोर कुछ भी हमारे चारों ओर फैले हैं, ये प्रकृति के स्रोत या अंग है और पंचभूतों या पंचतत्वों से निर्मित है। भारतीय दर्शन के अनुसार एक जीवित प्राणी जिसकी आत्मा है वह पंचमहाभूतों से पैदा होता है। विश्व का हर प्राणी इस प्रकार इन पंचतत्वों में बना है। सृष्टि की सम्पूर्ण संरचना का यही आधार है।

यह अवधारणा पारिस्थितिकीय सन्तुलन एवं प्राणी के पृथ्वी पर अस्तित्व के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे यह भी स्पष्ट है कि संसार में पांच तत्वों के बीच एक सजीव सम्बन्ध, एक दूसरे पर निर्भरता और एक दूसरे तत्व के बदलाव की निरन्तर प्रक्रिया जाती है। इन पांच तत्वों के परिवर्तित होते रहने का भी और आपसी सम्बन्ध का भी एक चक्र है।

यह पर्यावरण और पारिस्थितिकीय का मनुष्य से अटूट सम्बन्ध और हर जीवित प्राणी का अन्त: सम्बन्ध होने का ज्ञान प्रकृति के साथ रहकर भारतीय मनीषियों ने प्राप्त किया और यह व्यापक सोच प्राचीनकाल से भारतीय संस्कृति की जड़ों में समायी हुई है।

6.3.2 पर्यावरण के लिए धार्मिक आधार भी

प्रकृति के संसाधनों एवं स्रोतों का सोच समझकर उपयोग करने तथा संवर्द्धन करने की मनुष्यों को पृथ्वी मुक्त में सलाह दी गई है एवं पक्षियों, पशुओं तथा वनस्पतियों का संरक्षण करने के कार्य को धार्मिक कार्य माना है। इसका अर्थ यह हुआ कि मोर, शेर, ऊँट, मगरमच्छ आदि विभिन्न पशु-पक्षियों का संरक्षण करना चाहिए। भारतीय पौराणिक कथाओं में तो कुरमा, मत्सया, वरहा, नर्सिह आदि चौदह अवतार पशु पक्षियों की आकृतियों के माने गए हैं अर्थात् पशु पक्षियों को भी देवत्व का रूप प्रदान किया गया है ताकि लोग पशु पक्षियों के प्रति सम्मान और संरक्षण का भाव रखें। अमेरिका में तो 22 अप्रैल, 1970 से पृथ्वी दिवस मनाया जाने लगा है और अब दुनिया में हर साल उसके बाद 22 अप्रैल को यह दिवस पृथ्वी की रक्षा के लिए मनाया जाता है लेकिन भारत में तो यह अति प्राचीन परम्परा है कि पृथ्वी या धरती माता भी सदैव पूज़ा की जाती रही है।

वनों, वन्य जीवों एवं पर्यावरण के प्रति सचेत न रहने से इनके विनाश का लम्बा सिलसिला चला। पर्यावरण एवं प्रकृति असंतुलन के खतरों ने पश्चिमी देशों को पर्यावरण के संरक्षण के उपाय ढूंढने को विवश किया। लेकिन भारत में पर्यावरण विज्ञान को प्रारंभ से ही परम्परा और संस्कृति से जोड़ने के प्रयास किए गए। जैसे गायों, वृक्षों आदि की पूजा करना,

सूर्य को जल चढ़ाना, पक्षियों को दाना डालना, कुते को रोटी डालना आदि भारतीय परम्परा में पुण्य कार्य माने जाते हैं। इसी प्रकार प्रकृति एवं पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्द्धन की परम्पराओं से भारतीय संस्कृति का ताना बाना बुना गया है।

6.3.3 पंचतत्व और पर्यावरण

भारतीय परम्परा के अनुसार मनुष्यों' पशु पक्षियों, वनस्पतियों एवं अन्य प्राणियों का जीवन पांच तत्वों के अस्तित्व से ही सम्भव है। ये प्रकृति के पांच तत्व आकाश, वायु, अग्नि या ऊर्जा, जल और मिट्टी या भूमि समस्त प्राणियों के जीवन की आवश्यकताओं को जीवन देने वाले तत्व माने गए हैं। इन्हीं पांचों तत्वों को पर्यावरण का प्राण या जीवन सहायक प्रणाली माना गया है। ये धरती, आकाश, चलती हुई हवा, बहता हुआ पानी, भूमि पर फैले मैदान, पर्वत, श्वेत, वन आदि सबको प्रकृति के विभिन्न रूपों में देखा गया है। भारतीय संस्कृति एवं प्राचीन परम्पराओं में इन पंचतत्वों या पंचमहामुवों को एक दूसरे पर निर्भर माना गया तथा प्रकृति में चारों ओर ये पांच तत्व विभिन्न रूपों में अपने को अभिव्यक्त करते हैं। ये पंचतत्वों का विज्ञान ही पर्यावरण का विज्ञान है और ये ही जीवन के अस्तित्व को कायम रखने एवं इन पंचतत्वों में संतुलन रखते हुए स्वस्थ जीवन जीने का विज्ञान है।

6.3.4 प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति सम्मान की परम्परा

भारतीय संस्कृति और परम्परा में मनुष्यों एवं प्राणियों के स्वस्थ जीवन के लिए पर्यावरण एवं प्रकृति के संरक्षण एवं संवर्द्धन को न, केवल वैज्ञानिक, पौराणिक एवं धार्मिक आस्था और आधार ही दिया है बल्कि पर्यावरण के स्रोतों एवं प्रकृति का इस प्रकार मानवीयकरण किया है कि व्यक्ति के मस्तिष्क और भावना में उसे क्षति पहुँचाने का भाव ही उत्पन्न न हो बल्कि उसके संरक्षण, पवित्रता एवं समृद्धि के लिए उसमें अन्तःप्रेरणा जागृत हो। इसलिए भारतीय संस्कृति और परम्परा में धरती को माता, गंगामाता, नर्मदा या गोदावरी मैया जैसे सम्बोधनों की परम्परा चली। अरण्य या वनों के लिए 'वन देवता' का सम्मानीय सम्बोधन शारनों ने रचा। जल के देव वरूण को माना गया। वायुदेवता, वर्षा के देव-इन्द्र देवता जैसे शब्द परम्परा का आधार बने। यहां तक विषधारी सांप को भी नागदेवता का सम्बोधन दिया गया। कृष्ण मोर पंखों को मुकुट बनाया।

देव के देव गणेश हाथी के आकार में, ऐसे ही वराह आदि के अवतार और रूप एवं सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के प्रतीक समस्याएं और कथाएं प्रकृति और पर्यावरण को जीवन और अस्तित्व का आधार मानते हुए इन्हें सम्मान और पूजा के योग्य माना है। भारतीय संस्कृति और परम्परा में पर्यावरण और पारिस्थितिकीय सम्पूर्ण प्रक्रिया का अध्ययन एवं मनन करके इसे मनुष्य एवं प्राणियों के अस्तित्व को बनाए रखने एवं स्वस्थ जीवन के लिए सर्वोच्च एवं पवित्र स्थान प्रदान किया है एवं मानवीय संवेदना एवं सोच के इनके महत्व को प्रतिपादित करने के विभिन्न उपाय किए हैं।

भारतीय मनीषियों ने वनों के अन्दर अपने निवास या तपस्यास्थल बनाकर प्रकृति के सानिध्य में यह ज्ञान और अनुभव अर्जित किया कि ज्ञान, पृथ्वी, वृक्ष, पेड़ पौधें या वनस्पतियां

धरती का सौन्दर्य हैं और ये पर्यावरणीय सन्तुलन के द्वारा सभी जीवों के स्वास्थ्य और अस्तित्व को कायम रखने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए दुनिया की बड़ी सम्भावनाओं और संस्कृतियों की तरह भारतीय संस्कृति और पृथ्वी को देवी मां का महान् दर्जा प्रदान किया। भारतीय वेदों एवं ग्रन्थों ने प्रकृति और पर्यावरणीय को पूजनीय माना। अथर्ववेद में पृथ्वी को कभी हानि नहीं पहुँचाने की प्रार्थना की गई है और उसके संरक्षण की प्रतिबद्धता दोहराई गई है। पृथ्वीसूत्र, धरती मा को समर्पित सबसे बड़ा मत्र है। अथर्ववेद में पारिस्थितकीय सन्तुलन की विषद् विवेचना है।

भारतीय चिन्तन में जल वायु, आकाश एवं सूर्य और मनुष्यों के बीच एक स्वनिर्मित सम्बन्ध बताया गया है। इन्हें स्वच्छ रखने तथा प्रदूषित न करने पर बल दिया गया है। प्राणी जगत जिन पर्यावरणीय पंचतत्वों से बना है, उन्हें प्रकृति में शुद्ध एवं स्वच्छ रखना अनिवार्य माना गया है। सूरज और जल को वनस्पतियों, मानव जीवन एवं इनकी ऊर्जा के पुर्नउत्पादन के लिए आवश्यक माना गया है।

6.4 भारतीय परम्परा में पर्यावरण पोषण

पर्यावरण एवं पर्यावरणीय तत्वों के संरक्षण के लिए भारतीय संस्कृति और परम्परा में वृक्षों, सूर्य, वायु आदि की पूजा एवं पोषण की एक लम्बी श्रृंखला है। जनमानस में दृढ़ता से प्रकृति के संतुलन को बनाएं रखने का विचार पुष्ट किया गया है। घर-घर में तुलसी का पौधा लगाना, उसको सींचना, सायंकाल उसके सामने दीपक जलाना एवं नतमस्तक होना भारतीय परम्परा का एक बड़ा उदाहरण है। ऊंचे पर्वतों पर देवदार वृक्षों में देवों का वास बताया गया है। हनुमानजी जब हिमालय से लक्ष्मण के प्राणों की रक्षा करने के लिए जड़ी-बूटी लेने जाते हैं तो समकथा के अनुसार वनस्पतियों से क्षमा के साथ उन्हें तोड़ने की प्रार्थना करते है। नीम, अशोक आदि कई वृक्षों को औषधीय एवं उपयोगी वृक्ष माना है। कुछ पुष्पों को भी शुभ माना है। वायु को प्राणों का आधार और अग्नि को शक्ति का स्रोत माना है। सूर्य को देव माना है। गुजरात, उडीसा आदि में सूर्य के मंदिर हैं।

भारतीय संस्कृति और परम्परा में जानव जीवन एवं प्राणी जगत को दार्शनिक एवं धार्मिक दृष्टि से भी पारिस्थितिकीय चक्र से जोड़ा है एवं भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के मूल में मानव और प्रकृति के अटूट रिश्ते को महत्व दिया गया है। सम्पूर्ण पर्यावरणीय संरचना को पौराणिक एवं धार्मिक पवित्रता एवं गाथाओं से गुंथने का प्रयास किया गया है। भारतीय संस्कृति और साहित्य में नदियों, पर्वतों, प्रकृति के विभिन्न अंगों का गुणगान है। कमल का फूल भारतीय जीवन दर्शन में एक पवित्र प्रतीक है।

भारत गांवों का देश रहा है और कहा गया है कि भारत की आत्मा गांवों में वास करती है। जब तक गांव आबाद रहे, मनुष्य का प्रकृति और पर्यावरण से नजदीक का संबंध कायम रहा। प्रकृति से भोजन, पशुओं के लिए चारा, जलाऊ लकड़ी, खेतों के लिए प्राकृतिक खाद और वनस्पतियों से मनुष्य को औषधियां मिलती रही हैं। मनुष्य की आवश्यकताऐ पूरी करने के अलावा वृक्षों से छाया, बाढ़ से रक्षा, धूल और आदि से भी रक्षा होती रही। यही कारण है कि

राजस्थान में खेजड़ी जैसे वृक्ष को पूजा जाता है एवं वृक्षों को काटने से रोकने के लिए राजस्थान में अनेक महिलाओं ने अपने प्राण न्योछावर कर दिए थे।

भारतीय संस्कृति में तो विश्व में शांति के लिए पर्यावरणीय शुद्धता एवं पारिस्थितिकीय संतुलन को आवश्यक माना गया है। वैदिक मंत्रों में पृथ्वी पर शांति, जल, वायु, आकाश,वनस्पतियों और वृक्षों एवं समस्त प्राणियों की समृद्धि समन्वय एवं शांति की कामना की गई है। भारतीय समाज की संरचना, वनों एवं कृषि की विविधता के अनुरूप की गई है। जिसमें कटि पतंगों से लेकर जीवन के हर रूप का सम्मान किया गया है। घनों, वृक्षों एवं वनस्पतियों में भी जीवन की कल्पना संसार में सबसे पहले भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचन्द बोस ने की थी। उन्होंने यह सिद्ध किया कि पेड़-पौधे में भी संवेदना और जीवन होता है। जब किसी फूल को तोड़ते या वृक्ष को काटते हैं तो उनमें भी इसकी अनुभूति होती है। भारत में प्रतीकों एवं एक भाषा से प्रकृति से सम्प्रेषणीय संबंध की परम्परा रही है। मनुष्य और प्रकृति के बीच सीधा पर्यावरणीय संवाद रहा है। इस प्रकार सदियों से भारतीय मानव एवं संस्कृति ने समृद्ध पर्यावरणीय परम्परा को संजोए रखा है।

6.5 भारत में पर्यावरणीय समस्याएं और समाधान

दुनिया में हुए भौतिक आविष्कारों औद्योगिकीकरण आदि अनेक ऐसे कारण है, जिन्होंने शहरीकरण को बढ़ावा दिया और आबादी में तेज वृद्धि के साथ ग्रामीण जनता का पलायन नगरों की ओर होने लगा। लोग प्रकृति से दूर होते गए और सदियों की पर्यावरण परम्पराऐं एवं सांस्कृतिक धागे कमजोर पड़ने लगे। व्यवहारिक -जीवन में आदमी अपने लाचार के कारण परम्परागत जड़ों से कटने लगा। आदर्शों और व्यवहार में अन्तर करता गया। विकास का अर्थ आर्थिक एवं भौतिक समृद्धि से जुड़ गया। उसने आधुनिक विकास का रास्ता पकड़ लिया। औद्योगककिरण एवं नगरीयकरण ने भारत को पर्यावरणीय विनाश और पारिस्थितिकी असन्तुलन की ओर मोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि भारत के समक्ष अनेक पर्यावरणीय समस्याएं पैदा हो गई। जिनमें प्रमुख समस्याएं वन विनाश और पर्यावरणीय तत्वों के स्रोतों के दूषित हो जाने की हैं।

वर्तमान में मानव और प्रकृति के बीच की अंतर्क्रिया इतनी व्यापक हो गई है कि इससे सारी मानव-जाति को प्रभावित करने वाला प्रश्न पैदा हो गया है। आधुनिक पारिस्थितिकी अनुसंधान से ज्ञात होता है कि जैव मडल पर मनुष्य के निरंतर, एक तरफा और बहुत हद तक अनियंत्रित प्रभाव से हमारी विकासशील मानव सभ्यता एक ऐसी सभ्यता में बदल रही है जो मरुद्यानों के स्थान पर रेगिस्तानों को स्थापित कर रही है। परिणामस्वरूप पृथ्वी पर सभी जीवों के विनाश का भय पैदा हो रहा है। पारिस्थितिकी संकट के कारणों को मोटे तौर पर पांच वर्गों में बाट सकते हैं - (1) तीव्र औद्योगिक विकास, (2) तीव्र जनसंख्या वृद्धि, (3) अधिक तकनीककिरण, (4) असीमित खनन और (5) अनियोजित विकास। इन कारकों से जो समस्याएं उत्पन्न हुई हैं, उनमें वनाच्छादित क्षेत्रों का कम होना, भूमि तथा जल का अमलीकरण होना, औद्योगिक अवशषों का बढ़ना जिनमें कुछ अत्यंत जहरीले पदार्थ भी मिले होते हैं। वायु, समुद्र तथा भूमि में प्रदूषण, परंपरागत ईंधन का बड़ी मात्रा में जलाया जाना जिसके परिणामस्वरूप

पृथ्वी के तापमान में वृद्धि और बदलाव आने की संभावना पैदा करने वाले कार्बन-डाई- आक्साइड के सांद्रण में वृद्धि होना मुख्य हैं।

विश्व के मौसम में उलट फेर

मनुष्य अपने संपूर्ण सामाजिक इतिहास में प्रकृति के साथ अपने संबंधों में परिवर्तन करता रहा है। प्रारंभ में प्रकृति के प्रति मनुष्य और समाज का दृष्टिकोण पूर्णत: उपभोक्ता का था, किन्तु बाद में उपयोग बढ़ने से यह भिन्न रूप ग्रहण करने लगा। प्रकृति द्वारा प्रदत्त संसाधनों का न केवल उपयोग किया गया अपितु उसका परिष्कार भी किया गया। उसी क्षण से प्रकृति के साथ उपभोक्ता संबंधों के स्थान पर प्रकृति पर प्रभुत्व जमाने तथा प्राकृतिक संसाधनों का व्यापक रूप से दोहन करने का दृष्टिकोण प्रतिस्थापित होने लगा। भोगवादी तथा व्यावसायिक प्रकृति होने से मानव तथा प्रकृति के मधुर संबंधों में परिवर्तन होने लगा। मनुष्य ने विज्ञान तथा तकनीक के सहारे, बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति के सभी संसाधनों का दुरुपयोग करके और प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करके अपने लिए विकट समस्याएं उत्पन्न कर ली हैं। प्रकृति के अत्यधिक शोषण के परिणामस्वरूप जातियों के विलुप्तीकरण की दर बढ़ी जो नई जातियों के क्रमिक विकास की दर की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। पिछले 2000 वर्षों में जो जातियां विलुप्त हुई हैं, उनमें आधे से अधिक जातियां सन् 1900 के बाद विलुप्त हुई हैं। जैविक विदों की मान्यता है कि गत 350 वर्षों में 19वीं शताब्दी के मध्य तक प्रति दस वर्ष में प्राणियों की एक जाति उप जाति नष्ट हुई है। यदि पूरी दुनिया की आयु को हम 5 अरब वर्ष माने और उसे 24 घंटे में सीमित कर दें, तो अभी मानव जाति को इस दुनिया में पैदा हुए मात्र दो सैकेंड का समय हुआ है।। इस अवधि में अनेक जीव प्रजातियां इस दुनिया में पैदा हुई किंतु जलवायु परिवर्तन के कारण अनेक जातियों का मूल समाप्त हो गया। यदि भविष्य में इसी तरह से जलवायु परिवर्तन होता रहा तो मानव जाति सहित अनेक प्रजातियों के लुप्त होने का भय है। वर्ष (1997 - 98) से पूरे विश्व में मौसम में जबरदस्त उलट-फेर हो रहे हैं। ठंड के दिनों में वर्षा हो रही है, तो वर्षाकाल में तापमान में वृद्धि हो रही है। मौसम-विभाग के वैज्ञानिकों के अनुसार एलनिनों के प्रभाव से संसार में जलवायु परिवर्तन के संकेत मिल रहे हैं. जिसके परिणामस्वरूप कहीं अतिवृष्टि, तो कहीं सूखे का प्रकोप देखा जाएगा। एलनिनों वस्तुत: पर्यावरण प्रदूषण तथा ग्रीन हाऊस गेसों के दुष्प्रभावों के कारण अपना यह रूप दिखा रहा है।

प्रकृति में फेर बदल से पर्यावरण संकट

आज से कई दशक पूर्व फ्रेडरिक एंजेल्स ने आगाह किया था कि 'हमें प्रकृति पर अपनी मानवीय विजयों के कारण आत्म - प्रशंसा में विभोर नहीं हो जाना चाहिए क्योंकि वह हर ऐसी विजय का हमसे प्रतिरोध लेती हैं। यह सही है कि प्रत्येक विजय से पहले तो वही परिणाम प्राप्त होते हैं जिनका हमने भरोसा किया था। पर बाद में उसके पूर्णत: भिन्न तथा अप्रत्याशित परिणाम प्राप्त होते हैं जिनसे अक्सर पहले परिणाम का असर जाता रहता हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अविच्छिन्न वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति से मनुष्य को प्रकृति पर अभूतपूर्व अधिकार मिलने से और बगैर सोचे-समझे, उसमें बड़े-बड़े फेर बदल करने से पर्यावरण सकट

गहराता जा रहा है और संपूर्ण मानवता के लिए प्रश्न- चिन्ह बनता जा रहा है। प्रदूषण, प्राकृतिक प्रकोपों तथा विविध सांस्कृतिक समस्याओं से घिरा मानव समाज भविष्य के प्रति चिंतित हो रहा है। यहां तक कहा जा सकता है कि यदि यही रवैया बना रहा तो पृथ्वी जीवन-विहीन हो सकती है। ओजोन गैस के आवरण की जहरीली गेसों से इतनी क्षति हो जाएगी कि सूर्य की पराबैंगनी किरणों का प्रकोप पृथ्वी तल पर बढ़ जाएगा और अंधापन, चर्मरोग, कैंसर, सूक्ष्म जीवों का विनाश और यहाँ तक कि जीवों के आनुवांशिक गुणों में परिवर्तन हो सकता है। इससे मौसम और जलवायु के स्वभाव में इतना परिवर्तन आ सकता है कि बाढ़ और सूखे के प्रकोप से जन- धन की अपार क्षति हो सकती है। वास्तविकता यह है कि हम केवल वर्तमान तक सीमित हैं, भूतकालीन अनुभवों से न हम शिक्षा लेना चाहते हैं और न भविष्य के प्रति जागरुक हैं। यदि ऐसा न होता तो यह स्थिति कदापि नहीं आती जो आज हमें डरा रही है। अत: मानव के भविष्य की संभावनाओं पर विचार किया जाना आवश्यक है।

समस्याएं और समाधान

भूतल पर अन्य जीवधारियों की अपेक्षा मानव, पर्यावरण का सबसे गतिशील कारक है। यदि वह पर्यावरण में परिवर्तन कर सकता है, तो अपने बुद्धि तथा विवेक की क्षमता से उस पर नियंत्रण भी रख सकता है। अत: आज जो पर्यावरणीय समस्याएं उपस्थित हुई हैं, उनका समाधान क्या जा सकता है, लेकिन प्रश्न है समस्या बोध का। यदि निम्नलिखित तथ्यों और समस्याओं का समाधान ढूंढने में सफलता मिलती है तो संभव है कि मानव का भविष्य उज्ज्वल होगा -

- प्रकृति के साथ संवेदनशील संबंधों का विकास किया जाना चाहिए अर्थात् प्रकृति को मां के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए।
- पर्यावरण के अनुरूप तकनीकों का विकास किया जाना चाहिए।
- संसाधनों की गुणवत्ता और भंडार के अनुरूप प्रयोग अर्थात संवर्धन तथा संरक्षणयुक्त विदेहन की नीति होनी चाहिए।
- बढ़ती जनसंख्या पर यथासंभव नियंत्रण रखा जाना आवश्यक है जिसके लिए परिवार कल्याण के प्रति नवचेतना का जागरण जरुरी है।
- प्रौद्योगिकी में सुधार ताकि प्रदूषण को कम किया जा सके। इसके लिए अपशिष्टों की पुनर्चक्रण विधि को अपनाया जाए।
- नगरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति पर अंकुश तथा 'गार्डेन सिटी' को प्रश्रय दिया जाना चाहिए।
- ऊर्जा संसाधनों का संरक्षण और वैकल्पिक (अपरंपरागत) साधनों का विकास। इसके तहत जल, विद्युत सौर ऊर्जा, सौर ऊर्जा बायो गैस आदि साधनों को बढ़ावा देना चाहिए।
- पूंजीवादी उत्पादक पद्धति अराजक तथा प्रकृति शोषक है। अत: प्रकृति के संरक्षण और विवेकपूर्ण उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए समाजवादी दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए।

- भौतिकवादी जीवन पद्धति में सुधार लाना चाहिए।
- वसुधैव कुटुंबकम की भावना का विस्तार किया जाना चाहिए जिससे मानवता के प्रति दायित्व में सुधार लाया जा सके।

उक्त कार्यक्रम को यदि पूर्ण रूप से क्रियान्वित किया जाए तो हम इस पृथ्वी की रक्षा कर सकते हैं, अन्यथा जीव जगत का गौरव प्राप्त करने वाला यह एकमात्र ग्रह भी सौरमंडल के अन्य ग्रहों की भांति सुनसान और वीरान हो जाएगा।

(अनिल कुमार सिन्हा, कुरुक्षेत्र जून, 1998)

आज की मुख्य पर्यावरणीय समस्याओं के कारणों की विवेचना डा. एल. एच. दाधीच ने इस प्रकार की है -

1. प्रदूषण: जल, वायु, भूमि का एवं ध्वनि प्रदूषण
2. जन संख्या विस्फोट
3. विश्व तपन एवं हरित गृह प्रभाव
4. ओजोन विरलता
5. जैव विविधता का हास
6. उद्‌योगों के मुख्य दुष्प्रभाव
   (1) अम्लीय वर्षा (2) भूमि का बंजर होना, नमीकरण
7. संसाधनों का क्रमिक हास

मुँह बाए खड़ी इन समस्याओं से जूझने के लिए उपाय आवश्यक है, इनमें से कुछ तो विश्व स्तर की कार्यवाहियों से निबटा जा सकता है पर कुछ स्थानीय उपायों से ठीक हो सकती है।

प्राकृतिक पर्यावरण व मानवीय पर्यावरण की प्रकृति व प्रभाव

प्रारम्भ में प्रकृति का साम्राज्य रहा, अरण्य संस्कृति की इस सुन्दर सामंजस्य का जीता- जागता उदाहरण व प्रतीक रही- प्रकृति मानव का हितकारी समिश्रण। आज का थका हरा वैज्ञानिक, तकनीकी विकास के चरम उत्कर्ष वाले विकसित देशों का नागरिक, अपनी सुन्दरतम कृति नगर से जब ऊब जाता है तो प्रकृति की सुखद गोद का आश्रय खोजता विश्व को रोंदता चलता है और अपनी विनाश लीला का उपहार छोडता जाता है, यद्‌यपि, वह स्वयं फिर भी प्यासा, अतृप्त और संभवत अधिक लोलुप लोटता है। पर्यटन का विश्वव्यापी वर्तमान विस्तार इस तथ्य की पुष्टि करता है। पहाड़, नदियाँ, पठार, मैदान, घाटियाँ-समुद्र तट, झीलें, वन, चरागाहों के प्रदेश और यहां तक की मरू भूमियाँ टुण्ड्रा व चट्टानी मानव रहित प्रदेश, ऊतुंग हिमशिखर व समुद्र की अतुल गहराईयाँ, इनमें निवासित जीव-जन्तु, जंगली जानवर, हवाएं-धाराएं- प्रवाल व द्‌वीप सभी प्राकृतिक पर्यावरण के आकर्षक अंगों की विविधता बिखेरे मनुष्यों का मन मोहते रहे हैं, रहते हैं और यदि सुरक्षित- संरक्षित रहे तो आगे भी मोहते रहेंगे। पर भविष्य पर कुछ प्रश्न चिन्ह अवश्य लगा हुआ है।

दूसरी ओर मानवीय-सांस्कृतिक पर्यावरण, उसका इतिहास, निमार्ण, विकास-विस्तार अपनी अलग-अलग गाथा संजोए हुए हैं। विज्ञानतकनीकी, मशीनों व शक्ति साधनों का विस्तार व

फैलाव, यातायात व संचार माध्यम, अधिवास, ग्रामीण व नगरीय ने मानव को लालची, स्वार्थी और दम्भी बना दिया है। पर्यावरण का विनाश इसी का तो मुख्य परिणाम स्पष्ट है।

मानव प्रकृति का स्वामी है अथवा संतान ? पर्यावरण संकट का प्रतिरूप झलकता है। विश्व स्तरीय व्यापक वन विनाश में, पारिस्थितिकी असंतुलन में, संसाधनों को बढ़ती सीमितता की अनुभूति में, विस्फोटक जनसंख्या वृद्धि के विकराल रूप में तथा प्रदूषण के अजगर द्वारा सब कुछ निगलने, गलने, दमघोंटू बनाने में। अपनी ही शक्ति से निर्मित इस दुनिया में मानव स्वयं को इतना त्रस्त-भयभीत क्यों पाता है ? यह बिन्दु अवश्य सर्वत्र विचारणीय है क्योंकि हम सभी के सामान्य हित से जुड़ा हुआ है।

सम्भवत: इस परिणाम का ही कारण है कि पश्चिम की भोगवादी संस्कृति, जिसने प्रकृति को अपना शत्रु मान लिया है, अपने को प्रकृति का स्वामी मानती है और प्रकृति का शोषण उसकी सहज प्रवृति व प्रमुख लक्ष्य है। इसी पश्चिमी- ललक व चकाचौंध में हमने भी अपनी परंपरागत भारतीय दृष्टि, जो शोषण की न होकर संरक्षण की थी, त्याग दिया लगता है। वस्तुत: भारतीय दृष्टि में मनुष्य प्रकृति का स्वामी नहीं बल्कि उसकी सन्तान व सतत चलने वाली सन्तति था।

पर्यावरण के प्रकार / तन्त्र / स्वरूप

विविध-रूपा पृथ्वी के पटल पर हमें प्रकृति-प्रदत्त अनेकानेक स्वरूपों में पर्यावरण के प्रकार-प्रदेश दृष्टिगत होते हैं। इनको पारिस्थितिकी-तन्त्रों की भी संज्ञा दी जा सकतीं है। इसलिए पर्वतीय व मैदानी पर्यावरण, घाटियों, पठारों व मरुस्थलों का पर्यावरण, समुद्र तटों, द्वीपों, सागरों व महासागरों का पर्यावरण, विषवतरेखीय व ध्रुवीय उष्ण कटिकन्धीय एवं समशीतोष्ण कटिबन्धीय वनों व चरागाहों के प्रदेशों का पर्यावरण अपनी- अपनी विशिष्टता समेटे-फैलाए पृथ्वी-पटल को बहुमूर्तिदर्शी स्वरूप प्रदान करते हैं। ये अधिकांश प्रकृति-प्रदत्त उसी के द्वारा नियंत्रित व व्यवस्थित है तथा अपरिवर्तनीय है।

पर्यावरण के तन्त्रों की स्थैतिक भिन्नता व समानता

पर्यावरण के ये दृश्य स्थैतिक दृष्टि से भौगोलिक समानता रखते हुए भी अनेक स्थानों में अपनी भिन्नता स्पष्ट रूपेण प्रदर्शित करती है। गंगा-जमुना का मैदान, मैदान होते हुए भी, रूस के साइबेरिया प्रदेश के ओब-यनेसी नदियों के मैदानों से भिन्न अंक्षाशीय स्थिति तथा जलवायु की भिन्नता के कारण है। प्राकृतिक आधार के अतिरिक्त समान भूदृश्यों के प्रदेशों में पर्यावरण की भिन्नता का आधार मानवीय क्रिया कलापों, उसके इतिहास, संस्कृति, प्रयत्न व प्रबन्ध को भी देखा गया है। संसार के खनिजों के आधार पर सभी विकसित औद्योगिक प्रदेश एक दूसरे से अपनी भिन्नता इसी आधार पर दर्शाते है कि उनके पास कितने संसाधन हैं।

विश्व पर्यावरण की समस्याओं के आधार

समसामायिक काल में हमारी पृथ्वी एक 'घायल ग्रह' का वीभत्स स्वरूप अर्जित करने लगती है। फलस्वरूप प्रकृति व पर्यावरण का समग्र संतुलन बिगड़ता प्रतीत होता है। पर्यावरण की विकृति ने अविकसित समस्या को जो निरन्तर विस्तृत- विशाल-विकराल रूप लेती जा रही

है, जन्म दिया है। जिसमें मूलत: - वायु, भूमि, ध्वनि आदि का 'दिन दुगना रात चौगुना' प्रदूषण आधारभूत है। इसके अतिरिक्त भूमि- क्षरण, वन-विनाश, खनिजों का समाप्त प्राय: होना, ईंधन का अभाव, बाढ़ों एवं सूखो- अकालों आदि का विस्तार व पुनरावृत्ति भी कम महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं है। जीवाश्म ईंधन 'विशेष कर पेट्रोलियम तेल' का अभाव, मरूस्थलीय विस्तार, वायुमंडल में कार्बन डाई आक्साइड के बढ़ने से पृथ्वी तल पर ताप वृद्धि (ग्रीनहाउस- प्रभाव) ओजोन परत की क्षीणता, मानव स्वास्थ्य पर रेडियोधर्मिता का बढ़ता प्रभाव, औद्योगिक-रासायनिक तथा कीटनाशी दवाओं का विस्तृत होता हुआ दानवी शिकंजा, अम्लीय वर्षा आदि दारा मानव का जीवन तक खतरे में पड़ गया है।

पर्यावरण की परिस्थितियों की पृष्ठभूमि

निर्विवाद रूप से बढ़ती हुई विश्व जनसंख्या का दानव आधारभूत भूमिका रखता है। संसार के कतिपय, प्रदेशों में जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर 2.5 से 3.5 तक की है। इसके साथ-साथ बढ़ते हुए विश्वव्यापी औद्योगीकरण व नगरीकरण की तीव्रतम प्रवृति ने भी पर्यावरण असतुलन को अति-विकट रूप प्रदान किया हँ। जहाँ मानव की बढ़ती लिप्सा-चेष्टा, भूख व अनावश्यक मांगों ने संसाधनों का विस्तृत दोहन, शोषण, विनाश तथा विलोपन किया है, वहीं विज्ञान व तकनीकी विकास की विस्तृत कार्यकुशलता व कौशल ने इस विकृति को अधिक संकट ग्रस्त कर दिया है। यातायात व संचार माध्यमों के विस्तार-प्रसार प्रभाव ने संसाधनों के दोहन-शोषण के द्वार खोल दिए हैं। फलस्वरूप 'हमारी पृथ्वी का यह अंतरिक्ष यान' विभाजित-वर्गीकृत विश्व में बदल गया है। विकसित व विकासशील समृद्ध और सम्पन्न-संसार के अधिकतम संसाधनों का उपयोग उपभोग करते नहीं अघाते जबकि दूसरी ओर अविकसित देशों के करोड़ों लोग भूखमरी से जूझते कराहते नजर आते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्नों का खोखलापन व स्वार्थपरता

'क्लब ऑफ रोम', 'अवर कामन फ्यूचर' संयुक्त राष्ट्र व 'अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष' के क्रियाकलापों द्वारा लीपा-पोती 'घाव पर मरहम', व 'शहद की बूंदँ' का लाक्षणिक उपचार कैसे व्यापक पर्यावरण असंतुलन व विनाश की दिशा बदल पाता, या उसकी गति थामेगा, यह विचारणीय बिन्दु है। उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में समशीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों के' राष्ट्र एक न एक कार्यक्रम या दूसरे बहाने वनों का विनाश कर रहे हैं। मरूस्थलों के विस्तार को आमंत्रित करते हुए भूमि- क्षरण को व्यापक बना रहे हैं, क्यों? मूलत: अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु। भारत के गोआ प्रदेश के कच्चे लौहे से मलेशिया में लौहा बनेगा, फिर फिलिपाइन्स में उसका इस्पात बनेगा और अन्त में वह जापान में औद्योगिक मूल्यवान उत्पादक के निर्माण का आधार होगा। सरी प्रक्रिया जापान इन विकासशील देशों को सहायता के रूप में करेगा लेकिन इस प्रक्रिया में सन्निहित समस्त प्रदूषण इन देशों को ही वहन करना होगा। पिछड़े व अविकसित देशों की सहायता का यह स्वरूप अधिक व्यापक व गहन होता जा रहा है। सहायता की यह कपटपूर्ण चाल, कौशल व चतुराई मात्र नहीं तो और क्या हैं ?

पर्यावरण एवं विकास अबूझगुत्थी

खाड़ी युद्ध इस प्रकार के बहुराष्ट्रीय- अमरीका प्रभाव का ज्वलंत उदाहरण है। जहां कुवैत के 1000 में से 800 तेल के कुएँ धधक रहे हैं। संभवत तीन वर्ष तक उनका उपचार संभव न हो। अपना स्वयं का तेल बचाकर इस तेल क्षेत्र पर प्रभाव कायम रखना दोहन- शोषण भावना का प्रतीक नहीं तो और क्या है? पर्यावरण तो विकृत होना ही था। पर्यावरण का हास किसी भी विकास प्रक्रिया का द्योतक नहीं, अपितु उसका घृणित प्रतिगामी स्वरूप है।

औद्योगिक क्रांति काल से विकास के नाम पर

मानव द्वारा पर्यावरण में दखल की लगातार वृद्धि हुई है। इसकी मात्रा व गहनता, दिशा व विस्तार दिनों दिन पर्यावरण पत्रकारिता असंतुलन को बढ़ावा देते रहते हैं। कृषि आज विश्व में मानव का सर्वाधिक विस्तृत उद्योग-क्रियाकलाप है जिसने भोजन व फसलों के लिए तथा आवश्यक जल-व्यवस्था हेतु अनेक स्थानों पर वनों को उजाड़ा है, लेकिन औद्योगिक विकास ने मनुष्य की प्रवृति को और भी अधिक उजागर व हानिकर सिद्ध किया है। अधिक जनसंख्या के कारण घने वन्य प्रदेश तथा उपजाऊ मैदान मरूस्थलों की भेंट चढ़ गए और इतिहास साक्षी है कि बहुत प्रयास के उपरांत भी हम आज तक कितने मरुस्थलों को उपयोगी बनाने में सफल हो सके हैं?

प्रकृति की तुलना में मानव की सीमाएं प्रदूषण विस्तार

हम जो आज नष्ट करते हैं उनको प्रतिस्थापित करने की सामर्थ्य भी हममें नहीं है और स्वयं प्रकृति भी उस गति से उनको पुर्नस्थापित नहीं कर सकेगी। वन, खनिज फोसिलतेल आदि के निर्माण में प्रकृति ने लाखों वर्ष लगाए लेकिन हम उन्हें कतिपय शताब्दियों में तो क्या दशाब्दियों में ही नष्ट करने की प्रक्रिया अपनाए हुए हैं। लूटमार व लुटेरों के काम में मनुष्य निश्चित ही अन्य जीवों से बहुत आगे है। ठीक ही कहा है, "कोई चिड़िया अपना घौंसला अपवित्र, भ्रष्ट व विकृत नहीं करती है,, परन्तु अधिक बुद्धिमान मनुष्य ने इस कथन को भी झुठला दिया है। " एक अनुमान के अनुसार ब्रिटेन में प्रतिदिन एक व्यक्ति सैकड़ों ग्राम कूड़ा-करकट निकालता है जबकि संयुक्त राज्य में इसकी मात्रा कई किलोग्राम की होती है। यदि इन ज्ञात अपशिष्ट द्रव्यों में औद्योगिक उपोत्पादन ढेरों को सम्मिलित कर लिया जाए तो उसकी मात्रा और भी अधिक हो, जाती है। विश्व में ऐसे उत्पादों का विस्तार अनचाहे हो रहा है जिनको न तो उत्पादक पसंद करता है और न ही उपभोक्ता ही। मानव जाति का यह नीड़ 'पृथ्वी' निरंतर ऐसे विकृत पदार्थों से पटती जा रही है।

समूचा विश्व इन सभी समस्याओं से परिचित है और जून 1972 में स्टाकहोम (स्वीडन) में आयोजित हुए अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन "मानव पर्यावरण, की अभिशंसाओं के अनुरूप अपने देश को पर्यावरण की समस्या से मुक्त कराने हेतु प्रतिबद्ध है, पर ये तब हो संभव है जबकि पृथ्वी पर निवास करने वाला प्रत्येक मानव इस राष्ट्रव्यापी समस्या में अपना सक्रिय योगदान कर अपनी जिम्मेदारी निबाहने हेतु आगे आए। भौगोलिक और राजनीतिक दायरों की संकुचता को छोड़ विश्व को एक इकाई मानकर सभी एक साथ प्रयास करें और वर्तमान को सुखद बनाते हुए भविष्य को भी समस्यारहित बनाने में लग जाए।

6.5.1 जल-प्रदूषण

गन्दे जल के नालों एवं औद्योगिकीकरण का प्रदूषित जल गिरने के कारण भारत की अधिकांश नदियों का जल प्रदूषित हो गया है और धरती एवं भूगर्भ से उपलब्ध सम्पूर्ण जल का 70 प्रतिशत भाग भारत में प्रदूषित जल है। नदियों, झीलों, बांधों आदि के प्रदूषित जल से मछलियों आदि जलीय जीवों एवं मनुष्यों पर कुप्रभाव पड़ता है। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश एवं कर्नाटक में औसत से भी कम जल उपलब्ध होने लगा है।

नदियों के जल के प्रदूषण के इस सघन होते सिलसिले के अलावा देश के नगरी केन्द्रों में जल में धरातलीय जल में नाईट्रेट की सघनता पाई गई जो पेयजल को पीने योग्य नहीं रहने देती। तटीय एवं अन्य कई जलस्रोतों में 'लीड' और 'केडमियम' की सर्वाधिक सघनता भी मिली। घरेलू गन्दगी एवं औद्योगिक वेस्ट या खराब सामग्री एवं रसायनों के भारी मात्रा में नदियों में डाले जाने एवं कॉयल टेन्कर या, जहाजों के कारण केरल जैसे समुद्री तले का जल प्रदूषित होता है। इस प्रकार अनेक आर्थिक गतिविधियों ने विनाश में योग दिया है।

जल प्रदूषण की विकट होती समस्या से महानगर ही नहीं बल्कि छोटे शहर, कस्बे और गांव भी त्रस्त हैं। केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण मंडल ने एक सर्वेक्षण देश के 17 प्रदेशों या राज्यों के द्वितीय श्रेणी के 241 नगरों में कराया और यह आश्चर्यजनक तथ्य सामने आया कि इन नगरों में किए जाने वाले पेयजल की आपूर्ति का 90 प्रतिशत भाग प्रदूषित था। मात्र 1.6 प्रतिशत प्रदूषित या खराब पानी को इन नगरों में शुद्ध करना पाया गया।

ग्रामीण क्षेत्रों में लोग खुले कुंओं का पानी पीते हैं। जिसमें फ्लोराईड या मेग्नीज और अन्य खनिज पदार्थ इतनी अधिक मात्रा में होते हैं कि वे ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं। केंन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण मडल ने 1990 - 91 में साबरमती, सूचर्णरेखा, गोदावरी, कृष्णा, इन्डस और इनकी सहायक नदियों एवं सतजंल, गंगा, जमुना, चम्बल, दामोदर, गोमती एवं काली (यू.पी) आदि कुछ नदियां तो सर्वाधिक प्रदूषित नदियां हैं। जल एवं सफाई न होने से सम्बन्धित रोग जैसे फ्लूरोसिस, गस्ट्रोएन्ट्रीटिस आदि ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वाधिक होती है। हैजा, डिसेन्टरी, गेस्ट्रो पन्द्रीटिस एवं चर्मरोग नगरी क्षेत्रों में अधिक बढ़ रहे हैं। जल के संक्रामक या प्रदूषण से नगरीय क्षेत्रों में 60 प्रतिशत लोगों के अकाल मौत मर जाने का अन्दाज लगाया गया है।

6.5.2 वायु प्रदूषण

भारत में दो तिहाई पेयजल नदियों, झीलों, तालाबों और खुले कुओं आदि धरातलीय स्रोतों से उपलब्ध होता है लेकिन नर्मदा को छोड़कर किसी भी नदी का जल शुद्ध नहीं रहा है। नगरों के बढ़ने और अधिक से अधिक जमीन पर खेती किए जाने की प्रवृत्तियों आदि के कारण परम्परागत जलाशय एवं तालाबों की संख्या निरन्तर घटती जा रही है। भारत में वर्षा के कुल पानी का चौथाई ही एकत्रित करके काम में लिया जाता है। वर्षा के जल को एकत्रित करके रखने की परम्परा के समाप्त प्राय: होने और जल प्रबंधन या शहर हार्वेस्टिंग की योजनाओं को बनाए रखने के अभाव में अनेक गांवों में पेयजल की दुर्लभता पैदा हो गई है और कोई एक

लाख 75 हजार गांव ऐसे होंगे जहां सुरक्षित पेयजल का अभाव पैदा हो गया है। यही हाल अधिकांश नगरीय कच्ची बस्तियों का है जहां दो तिहाई को साफ पेयजल नहीं मिल पाता। जो भूगर्भ से पानी मिलता है, वह रसायनों और छपाई उद्योगों के दूषित जल से ग्रस्त है। भारत के कई प्रदेशों के शुष्क या अर्द्धशुष्क जलवायु वाले गांवों में पानी का संकट है। गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान जैसे प्रदेशों में लोगों को पेयजल लाने के लिए रोज मीलों पैदल जाना पड़ता है।

भारतीय क्षेत्रों में आजादी को तेजी से बढ़ जाने एवं शहरों के अनियोजित विकार के कारण जल की दुर्लभता उत्पन्न हुई। गुजरात, कर्नाटक, हरियाणा जैसे प्रदेशों में भूगर्भीय जलस्तर बहुत नीचा चला गया। इससे यह प्रगट होता है कि भारत में जलप्रबंधन एवं जल के सही उपयोग की राष्ट्रीय स्तर पर योजना का अभाव है। अब से कुछ साल पहले लगभग 450 धरातलीय एवं भूगर्भीय जल की गुणवत्ता जानने के लिए नमूने लिए गए जिनसे जलप्रदूषण की समस्या के कई तथ्य उभर कर सामने आए। पटना, नक्सर, कनौज, इलाहबाद और वाराणसी के आसपास गंगा नदी के जल को भारी प्रदूषण युक्त पाया गया। गंगा के लम्बे घाट में कानपुर, इलाहबाद और वाराणसी क्षेत्र में बायो- केमिकल ऑक्सीजन डीमान्ड (बी. ओ..डी.) पाया गया। लूधियाना, जालंधर के नीचे के स्ट्रीम की ओर सतलज में भी बी.ओ.डी का भारी स्तर पाया गया। यही हाल गोदावरी, कावेरी आदि नदियों का रहा।

भारत की पर्यावरणीय समस्याओं में जल प्रदूषण के अलावा दूसरी चिन्ताजनक समस्या वायु प्रदूषण की है। वायु प्रदूषण की दिन- प्रतिदिन बढ़ती समस्या का तीखा एहसास महानगरों या बड़े नगरों में वासियों को होता है। दिल्ली एवं अहमदाबाद जैसे बड़े नगरों में प्रदूषण के कारण खास सम्बन्धी रोग जैसे ब्रोन्काईटिस या अस्थमा सर्वाधिक पाए गए। औद्योगिकीकरण के कारण फैलने वाला वायु प्रदूषण और ओटो-वाहनों जैसे कारों, ओटोरिक्शा स्कूटर, दोपहिया या अन्य भारी वाहनों की संख्याएं तेज वृद्धि के कारण भारत के अनेक नगरों में तो वायु प्रदूषण सहनशक्ति की सीमा को भी पार कर गया है।

इसके अलावा 70 प्रतिशत घरों में भोजन बनाने एवं अन्य उपयोग में बायोगैस काम में ली जाती है जो सूखी लकड़ी गोबर के कच्छे आदि ईंधन जलाने में घरों में धुंआ से प्रदूषण उत्पन्न होता है। बायोगैस जलने से जो प्रदूषण या धुंआ फैलता है उससे वायु प्रदूषित होती है और घरों में जो महिलाऐं खाना तैयार करने आदि का कार्य करती है वे इस प्रकार के वायु प्रदूषण की सबसे अधिक शिकार होती हैं। प्रति व्यक्ति आधार पर प्रदूषित करने वाले तल तो भारत में एशिया के औसत से कम हैं लेकिन दिल्ली, अहमदाबाद, बडौदा, बम्बई, मद्रास, कानपुर, कलकत्ता आदि महानगरों में वायु प्रदूषण अपनी साधारण सीमाऐं पार कर चुका है। प्रति व्यक्ति कार्बनडाई ऑक्साइड (CO_2) 0.77 प्रतिशत एम.टी. निकलती है। CO_2 भूमि के परिवर्तित उपयोग में 120 एम.टी. पैदा होती है। चावल की खेती में मेथीन 36 मिलियन एम.टी. उत्पन्न होती है। इसी प्रकार सल्फरडाई ओक्साईड (एस. ओ) एवं "पार्टिकुलेटर मेटर' कई नगरों में सीमा पार कर गया है।

भारत में सर्वाधिक वायु प्रदूषण का ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा घरों में ईधन जलाने से होता है। कोयले के जलाने से विद्युत गृहों से भी वायु प्रदूषित होती है। घनी आबादी में केरोसिन स्टोव जलाने से भी वायु प्रदूषित होकर महिलाओं एवं बच्चों को प्रभावित करती है। महानगरों में सर्वाधिक वायु प्रदूषण का भार है। केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण मंडल के सर्वेक्षण में दिल्ली की हवा में SO_2 व NO_2 की मात्रा सर्वाधिक पाई गई है। इस प्रकार वायु प्रदूषण की समस्या ने भी बीसवीं सदी के अन्तिम अर्द्धशतक में विभिन्न कारणों से भारत में विकराल रूप धारण किया है।

6.5.3 भूमिका क्षय या प्रदूषण

एशिया में चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा भूभाग भारत का है। इसका 25 प्रतिशत भाग शुष्क या अर्द्धशुष्क और 6 प्रतिशत ठण्डा क्षेत्र है। देश में 11 प्रतिशत भूमि ही ऐसी है जहां मिट्टी में आन्तरिक बाधाऐं नहीं हैं। देश में लवणीयता के पानी से और हवा में भूमि कटाव आदि से प्रभावित 100 मिलीयन हैक्टर भूमि है। 4 मिलीयन हैक्टर भूमि में बेकार के उबड़ खाबड़ जंगल हैं और आबादी के भारी दबाव से 42 मिलीयन हैक्टर भूमि पर खेती होती है। एशिया में भारत ग्रामीण एवं ही एक ऐसा देश है जहां सिंचित भूमि लवणीयता से सर्वाधिक प्रभावित है। ।

भूमि की गुणवत्ता में कमी या भूमि का क्षय सबसे प्रमुख पर्यावरणीय समस्या है। इस समस्या से 174 मिलीयन हैक्टर भूमि प्रभावित है। जिसमें कृषि भूमि, अनउपयोगी भूमि, जंगलों की भूमि एवं जंगल शामिल है। भारत में 1985 में नेशनल वेस्ट लैन्डस डेवलपमेंट बोर्ड बनाया गया जिसने 40 मिलीयन खराब भूमि को हरा बनाने का दावा किया है लेकिन भूमि के खराब होने और प्रदूषित होने की समस्या विशाल है। भूमि के प्रदूषण से ग्रामीण जनता की आय पर सीधा असर होता है क्योंकि कृषि उनका मुख्य धन्धा है।

भारत सरकार ने 1992 में राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संवर्द्धन एवं विकास पर एक नीति और व्यूह रचना तैयार की थी जिसमें पर्यावरणीय समस्याओं की समीक्षा के साथ पर्यावरण को हानि पहुँचाए बिना स्थाई विकास की नीति अपनाई गयी। भारत ने जल, वायु, भूमि आदि के पर्यावरणीय समस्याओं का प्रबंध करने के लिए संवैधानिक, कानूनी एवं संगठनात्मक ढांचे की व्यवस्था की है। यह बात और है कि अनेक कारणों से पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान में बाधा आती हैं।

भारत में अभी तक भूमि की संरक्षण एवं संवर्द्धन पारिस्थितिकीय प्रणाली, विभिन्न प्रकार की भू- अवस्थाओं सिंचाई, बांधों, सिंचित क्षेत्रों आदि से संबंधित अलग से किसी कानूनी प्रावधानों की कमी है। भारत में पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 तो है लेकिन इसमें विस्तृत पर्यावरणीय मुद्दों के बारे में प्रावधानों की कमी है, इसलिए भूमि को प्रदूषण रहित एवं स्वस्थ एवं उपजाऊ बनाये रखने के लिए विस्तृत कानूनी एवं अन्य उपायों की आवश्यकता है।

6.6 स्वास्थ्य एवं सफाई की समस्या

भारत में प्रति हजार व्यक्तियों की आबादी पर 9 हॉस्पीटल बेडस् एंव लगभग 2.62 डाक्टर है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो चिकित्सा व्यवस्थाएं और बदतर हैं। केवल 73 प्रतिशत ग्रामीण

आबादी एवं 79 प्रतिशत नगरीय आबादी की सुरक्षित पेयजल तक पहुँच है। यह एशियाई स्टेन्डर्ड से काफी नीचे है। सफाई की स्थितियां तो भारत में और भी अधिक खराब हैं 4 प्रतिशत ग्रामीण व 38 प्रतिशत शहरी आबादी को सफाई की सुविधाऐं जैसे शौचालय एवं बन्द गन्दी नाली व्यवस्था उपलब्ध है। यह अनुमान है कि 50 प्रतिशत खाद्य नमूने दूषित या संक्रामक होते हैं और उनमें कीटनाशकों के अंश रहते हैं और 30 प्रतिशत में तो कम सीमा से ये ज्यादा मौजूद रह जाते हैं।

इसके अतिरिक्त भारत में विभिन्न उद्यमों में कार्य स्थितियां इतनी खराब होती हैं कि हजारों बाक्र इससे अधिक कर्मचारी हर साल उद्यमों में रोगग्रस्त होकर मर जाते हैं। इससे अधिकांश रोग धूलकणों या इस्ट या रासायनिक गैसों जैसे प्रदूषण तत्वों से होती है। खदानों में कार्य करने से भी बीमारी के शिकार हो जाते हैं। खदानो में कार्यरत हर 10 श्रमिकों में से शारीरिक दृष्टि से बीमार हो जाते हैं। मच्छरों से तथा क्षयरोग से भी भारी संख्या में लोग बीमारियों के शिकार होते हैं।

6.7 वन्यजीव संरक्षण

पारिस्थिकीय एवं पर्यावरण का वन्य जीवन एवं प्राणी एक प्रमुख अंग रहा है। भारत में आजादी से पूर्व वन्य प्राणी एवं वन बहुत सुरक्षित थे। परम्परा एवं संस्कृति ने भी जीवों के प्रति दयाभाव को बढ़ावा दिया। वन विनाश एवं नगरीयकरण ने वन्य आबादी को भारी हानि पहुँचाई। शेर एवं वन्य जीवों की हड्डियों एवं चमडी की तस्करी ने वन्य जीवों के शिकार को बढ़ावा दिया। 1996 के आकड़ों को देखें तो ज्ञात होगा कि लगभग 40 से अधिक वन रक्षकों एवं वनों की रक्षा करने वाले अधिकारियों ने अपने प्राण शिकारियों के हाथों गंवाए। शिकारियों ने हाथियों, शेरों एवं अन्य वन्य जीवों के शिकार के घृणित से घृणित मार्ग अपनाए। वन संरक्षण के विभिन्न उपायों, कानूनी एवं वन्य जीवन रक्षा के लिए विविध संस्थाओं से उपलब्ध धन के बावजूद संरक्षित एवं दुर्लभ, वन्य जीवों की संख्या निरन्तर घटती जा रही है।

वन्य जीवन के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए दृढ़ राजनैतिक इच्छाशक्ति के अभाव में तथा जनता में वन्य जीवन के प्रति परम्परागत सोच एवं संवेदना की कमी के कारण वन्य जीवों की आबादी बहुत कम हो गई है और अब संरक्षित अभ्यारणयों में ही वन्य जीवन को देखना संभव है। सन् 1975 टाइगर के संरक्षण के लिए प्रोजेक्ट टाइगर बनाई गई और 1993 में टाइगर संवर्द्धन पर इन्डोज चाईनिज प्रोटोकोल पर हस्ताक्षर हुए, 1993 में ही ग्लोबल टाइगर फोरम बना। 1994 में राष्ट्रीय टाइगर कार्य योजना तैयार की गई। इस प्रकार टाइगर जैसे दुर्लभ जीवों की रक्षा के लिए अनेक प्रयास किए गए और लाखों रुपये खर्च किए गए फिर भी इन जीवों की शिकार का सिलसिला नहीं रुका है।

वन्य जीवन के विनाश को रोकने के लिए कठोर कदम उठाने का समय आ गया है। वन्य जीवों के शिकार को रोकने के लिए वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम, 1972 में तुरन्त संशोधन की आवश्यकता है। वनों एवं वन्य जीवों के विनाश को रोकने एवं वन प्रबंधन का नियंत्रण करने के लिए क्षेत्रीय सेवा या टेरिटोरियल आर्मी को संगठित किया जाना चाहिए और उन्हें शिकारियों पर गोली चलाने का अधिकार होना चाहिए। वन्य जीवों को मारने का अपराध

कठोर बनाया जाना चाहिए और ऐसे अपराधों के लिए कानूनन कठोर सजा के प्रावधान किए जाने चाहिए।

वन्य जीवन की रक्षा करने वालों को प्रोत्साहन देने एवं शिकारियों दारा वनों एवं वन्य जीवन की रक्षा करने वालों के मारे जाने पर उनके परिवारों को उचित मुआवजा दिया जाना चाहिए।

6.7.1 अदालतों का दखल

वर्तमान वन्य जीवन संरक्षण कानून की समीक्षा के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय ने केन्द्र सरकार से यह बताने को कहा कि वह वन्य जीवन संरक्षण कानून के संबंध में क्या कार्यवाही कर रही हैं। केन्द्र सरकार ने बताया कि वे वन्य जीवन संरक्षण कानून को पूरी तरह बदलने या संशोधित करने पर चिंतन कर रही है। 1993 में भारी मात्रा में वन्य पशुओं की खाल (स्कनि), पुख और टाइगर की हड्डियां आदि पकड़ी गई। इस पर 'वर्ल्ड वाइल्ड लाईफ फण्ड' ने अदालत का ध्यान भारत में वन्य जीवन की खराब स्थितियों की ओर आकर्षित किया। न्यायालय ने इस पर 1995 में एक कमेटी बैठाई जिसने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। अदालत में अपील कर्ता ने उन सिफारिशों को क्रियान्वित करवाने की अपील की।

6.7.2 संरक्षित क्षेत्र

भारत सरकार ने कम होती वन्य जीवों की आबादी एवं ऐसे वन्य जीवों की रक्षा करने के लिए जिनका अस्तित्व खतरे में पड़ गया है, बचाने के कई उपाय क्रियान्वित किए। वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम, 1972 में ये प्रावधान किया कि वन्य जीवों के आवास की रक्षा की जाए एवं संरक्षित वन्य जीवों की अखिल भारतीय स्तर पर सूची तैयार की जाए। इसी प्रकार 131 राष्ट्रीय पार्क एवं अभयारण्य 1975 में स्थापित किए गए जिनकी संख्या 1975 में बढ़कर 496 हो गई।

भारत सरकार की नीति के अन्तर्गत जिन घनी वन्य जीव आबादी वाले वनों एवं वनस्पति क्षेत्रों को संरक्षित घोषित किया गया वहां विकास के द्वारा उन क्षेत्रों का उपयोग नहीं किया गया एवं ऐसे वन क्षेत्रों को बचाने में सहायता मिली। उदाहरण क लिए केरल की 'साइलेन्ट वैली' में जल विद्युत परियोजना नहीं लगाई जा सकी। इसी प्रकार कच्छ की खाड़ी में 'मेरिन नेशनल पार्क' के पास गुजरात सरकार द्वारा स्वीकृत तेल रिफायनरी लगाने का प्रस्ताव रह करना पड़ा। इस प्रकार देश में अभ्यारण्यों एवं संरक्षित वनों की रक्षा का मार्ग खुला। वनों एवं खनिज की खदानों का विकास के नाम पर उपयोग करने की सरकारी योजनाओं का भी स्थानीय समुदायों ने विरोध किया। समुद्री तटों की पारिस्थिकीय का मछुवारों ने विरोध किया। राजस्थान में सरिस्का अभ्यारण्य के पास खदानों का ग्रामीणों ने विरोध किया। इसी प्रकार देश में प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण के लिए चेतना जागृत होने लगी एवं देश में लोगों का ध्यान पर्यावरण प्रकृति संरक्षण के लिए भारतीय परम्पराओं और संस्कृति की ओर आकर्षित होने लगा।

6.8 भारत की पर्यावरणीय एवं वनस्पतीक विविधता

भारत भौगोलिक स्थितियों एवं विभिन्न प्रकार की जलवायु, वनस्पति, दुर्लभ पशु पक्षियों के विभिन्न प्रजातियों एवं पारिस्थिकीय प्रणाली की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। इतनी अधिक विविध पर्यावरणीय विविधता, भौतिक एवं जलवायु विशेषताओं वाला दुनिया में शायद ही भारत जैसे और देश हो। सदियों तक भारत ने अपनी परम्पराओं एवं संस्कृति के द्वारा प्रकृति और पर्यावरण की इस विविधता का संरक्षण एवं पोषण किया है। एक अनुमान के अनुसार आज भी वनस्पतियों और पशु पक्षियों की लगभग कम से कम 75000 एवं 45000 प्रजातियां भारत में पाई जाती है।

हिमालय की पर्वत श्रृंखलाऐं दुनिया में सबसे ऊँची हैं। ये पर्वत श्रृंखलाऐं भारत की लम्बी सीमा की तरह है। भौगोलिक, वनस्पतियों विविध वन्य प्राणियों की दृष्टि से भी बहुत समृद्ध हैं। भारत का हिमालय सहित उत्तरी पूर्वी क्षेत्र प्राकृतिक एवं पर्यावरणीय समृद्धि एवं विविधता के कारण अद्भुत क्षेत्र है। वन्य प्राणियों से भी आबाद है। इस क्षेत्र में कम नगरीयकरण एवं कम आबादी वाले क्षेत्र हैं।

भारत का तटीय क्षेत्र भी व्यापक है। यह सौराष्ट्र में जामनगर से कोचिन, मद्रास, विशाखापट्नम से पूर्व में कलकत्ता तक फैला है। तटीय क्षेत्रों में भी समृद्धि एवं वनस्पतियों एवं प्राणियों की विविधता है। इस पूरे तटीय क्षेत्रों में भी समृद्धि एवं वनस्पतियों एवं प्राणियों की विविधता है। इस पूरे तटीय इलाके में विश्व की अन्य 41 प्राणिलयों के अलावा कुल पर्यावरण 59 प्रजातियों के जीव पाए जाते हैं। लेकिन इस सम्पूर्ण तटीय क्षेत्र पर जो मछली खाने के व्यवसाय, आसपास की भूमि के उपयोग में परिवर्तन उद्योगों का प्रारंभ एवं जल प्रदूषण ऐसे पर्यावरणीय दबाव है जो इस क्षेत्र में जलीय जीवों एवं प्राकृतिक जीवन को हानि पहुँचाने की प्रक्रिया में ही जो गीली महत्वपूर्ण भूमि है उसका मात्र 28 प्रतिशत संरक्षित है। अधिकांश गीली भूमि रासायनिक या अन्य प्रकार के प्रदूषण की चपेट में हैं।

प्रौद्योगिकरण एवं अन्य आधुनिक प्रक्रियाओं के कारण पीली मिट्टी एवं तटीय क्षेत्रों की वनस्पति एवं वन्य जीवन की विविधता को प्रभावित किया है। बीसवीं सदी के पूर्वाद्ध तक भारत के चावल उत्पादन करने वाले किसान कोई 50 हजार किस्म के चावल उत्पादित करते थे। लेकिन सदी के अन्त तक कृषि आधुनिकीकरण एवं हरित क्रान्ति के बाद कोई 50 किस्म चावल का उत्पादन होता है। इसके अलावा, 17270 प्रकार के पौधों में से 1479 प्रकार के पौधों का क्षय होने का खतरा है। 1178 प्रकार की पक्षियों की प्रणालियों में से 72 प्रजातियां समाप्त होने के खतरे का सामना कर रही हैं। 400 में से 17 प्रकार के रेंगने वाले जीवों का जीवन भी नष्ट प्राय: होने को है।

धरती पर आबादी का निरन्तर बढ़ता दबाव और कृषि के लिए 57 प्रतिशत भू- क्षेत्र काम आने लगा है। बांग्लादेश के बाद भारत ही एशिया में एक ऐसा देश है जहां फसल के लिए सर्वाधिक भूमि काम में ली जाती हैं। इस प्रकार समृद्धि एवं वन्य जीवन एवं वनों की विविधता से भरपूर भारत गत सदी में पर्यावरणीय असन्तुलन की चपेट में आया है।

6.9 सारांश

इस प्रकार जहां सदियों तक भारत अपनी प्रकृति और पर्यावरणीय सम्पदा का संरक्षक और पोषण अपनी परम्पराओं आस्थाओं और सांस्कृतिक चिन्तन के कारण करने में समर्थ रहा, वहां गत 20वीं सदी के आधुनिक और भौतिकता से पूर्ण चिन्तन एवं आविष्कारों के कारण विकास का जो दौर चला ले उसमें प्राकृतिक' भौगोलिक पर्यावरणीय विविधता एवं प्राणियों का अस्तित्व सिमटने लगा और अनेक वनस्पतियों जीवों की प्रजातियाँ नष्ट प्राय: होने के दौर में आ गई ।

देश के सामने प्रौद्योगिकीय चलन, कृषि एवं उद्योगों के क्षेत्र में परिवर्तनों के कारक खतरनाक बेकार होने वाले कचरों एवं सामग्री के प्रबंधन औद्योगिकरण से होने वाले प्रदूषण नदियों के जल के प्रदूषण पारिस्थितिकीय समस्याओं और संकटों अन्धाधुन्ध जगंलों एवं वृक्षों की कटाई, खनिजों के दोहन के लिए माइनिंग या खदानों के कार्य आदि अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गई।

पर्यावरणीय असन्तुलन के विश्वव्यापी खतरों से भारत भी अछूता नहीं रहा। प्रकृति, प्राणीजगत एवं मानक स्वास्थ्य पर पढ़ने वाले कुप्रभावों एवं पर्यावरणीय प्रदूषण की मार ने आम जनजीवन झकझोर डाला। पर्यावरणीय समस्याओं आर्थिक एवं विकास गतिविधियों के सन्दर्भ में जनचेतना उत्पन्न होने लगी। कुल दशक पूर्व जहां यह कल्पना भी नहीं की गई थी कि भारत जैसे पर्यावरण एवं प्रकृति के प्रति सम्मान एवं वैमानिक दृष्टीकोण को संजोए रखने वाले देश के सामने भी कभी ऐसी समस्याऐं आएंगी वहाँ पर्यावरणीय क्षय एवं खतरों का तीखा एहसास होने लगा।

पर्यावरणीय प्रदूषण के बढ़ते खतरों और पश्चिम की तर्ज पर जारी विकास के बीच अनेक मुद्दों पर भारतीय जनजीवन में प्राचीन परम्पराओं और अपनी सांस्कृतिक आस्थाओं की जड़ों को लोगों ने तलाशना शुरू किया और इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में अनेक स्वयंसेवी संस्थाऐं पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए कार्य करने लगी। पर्यावरण को स्वस्थ रखने एवं प्रदूषण मुक्त बनाए रखने के लिए अनेक आन्दोलन भी शुरू हुए

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति भारतीय चिन्तन परम्परा एवं संस्कृति पर एक आलेख लिखिए।
2. आम आदमी के मानस में प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए प्राचीन चिन्तकों ने क्या उपाय किए? विवेचना करें।
3. पर्यावरण सन्तुलन के लिए धर्म को किस प्रकार आधार बनाया गया एवं प्रकृति पूजन के क्या कारण रहे है? लिखिए।
4. भारतीय नदियों के प्रदूषित किए जाने के बारे में एक आलेख तैयार कीजिए? इन पर अपने कुछ सुझाव भी दीजिए।
5. 'पंचतत्वों' या पंच महाभूतों और पर्यावरणीय स्वच्छता का विश्लेषण कीजिए।

6. भारत में जल प्रदूषण एवं पेयजल समस्या पर अपने विचार प्रगट कीजिए।
7. वायु प्रदूषण के परिणामों पर एक आलेख लिखिए।
8. वन्य जीवन के संरक्षण के लिए क्या उपाय करने चाहिए ? अब तक भारत में इस दिशा में जो प्रयत्न किए गए उन्हें रेखांकित कीजिए।
9. भारत की प्राकृतिक एवं पर्यावरणीय विविधता पर एक निबंध लिखिए।
10. भारत में पर्यावरणीय समस्याएं क्या हैं ? इन समस्याओं के समाधान के अपने विचार लिखिए।

6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Deopendra Basu (Ed.) Environment and Ecology. The Global Challenge, Jaipur, Printwell, 1995.
2. E.O. Wilson (Ed.) Biodiversity National Academy Press, Washington. D.C.
3. Geeti Sen (Ed.) Indigenous Vision People of India. Attitudes to the Enviroment Sage Publications New Delhi, 1992
4. S.P. Agnihotri, Enviroment Conservation for Global Development Chug Publication, Allahabad, 1995
5. Anil Agarawl, "Missing the Wood for the tree'' India Express (Magazine) September 9, 1984.
6. Payal Sampat, "The Ganga Myth *Reality'' World Watch, Washington D.C July-Aug.-1996.
7. World Resources : A Guide to the Global Environment, Oxford, 1996.
8. Pravin Seth (1997) Environmentalism Politics, Ecology & Development, Rawat Publications, Jaipur & Delhi.

इकाई 7 पर्यावरण और जनसंचार (Environmental Communication)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 पर्यावरण की अवधारणा

7.2.1 पर्यावरण के घटक

7.2.2 पर्यावरण का संगठन

7.2.3 पर्यावरण प्रदूषण एवं क्षय

7.3 जनसंचार की अवधारणा

7.3.1 जनसंचार की प्रक्रिया

7.3.2 जनसंचार के प्रकार

7.3.3 जनसंचार माध्यम

7.3.4 जनसंचार के कार्य

7.4 पर्यावरण और जनसंचार

7.4.1 पर्यावरण संरक्षण हेतु जनमत निर्माण

7.4.2 सतत् विकास और जनसंचार

7.4.3 प्राकृतिक आपदाएं एवं जनसंचार

7.4.4 संसाधन प्रबंधन और जनसंचार

7.4.5 जनसंचार का पर्यावरण पर दुष्प्रभाव

7.5 पर्यावरणीय संचार के माध्यम

7.5.1 मुद्रित माध्यम

7.5.2 रेडियो

7.5.3 दूरदर्शन

7.5.4 फिल्में

7.5.5 इन्टरनेट

7.5.6 मल्टीमीडिया

7.5.7 परम्परागत माध्यम

7.6 पर्यावरणीय संचार के क्षेत्र

7.6.1 पर्यावरण संरक्षण

7.6.2 पर्यावरण शिक्षा

7.6.3 पर्यावरण जागरुकता

7.6.4 जनसंख्या संचार

7.6.5 स्वास्थ्य संचार

7.6.6 विकासात्मक संचार

7.6.7 पर्यावरणीय कानून

7.7 पर्यावरणीय रिपोर्टिंग

7.8 सारांश

7.9 उपयोगी पुस्तकें

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य पर्यावरण और जनसंचार के परस्पर संबंधों को स्पष्ट करना है। वर्तमान उपभोक्तावादी युग में पर्यावरण संरक्षण और प्रबंध की प्रति लोगों में पर्यावरणीय योजना चेतना करना जनसंचार माध्यमों का एक प्रमुख कार्य है। इस दृष्टि से इस इकाई में निम्न बिन्दुओं पर पर्याप्त जानकारी दी गई है -

- पर्यावरण की अवधारणा
- जनसंचार की अवधारणा
- पर्यावरण और जनसंचार
- पर्यावरणीय संचार के माध्यम
- पर्यावरणीय संरक्षण में जनसंचार माध्यमों की भूमिका
- पर्यावरणीय रिपोर्टिंग

इसके अलावा इस इकाई में पर्यावरणीय संचार के क्षेत्र जैसे पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण शिक्षा, पर्यावरणीय जागरुकता, जनसंख्या संचार, स्वास्थ्य संचार और विकास संचार आदि के बारे में उपयोगी जानकारी प्राप्त करेंगे।

7.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक संवेदनशील सामाजिक प्राणी है जो अपने चारों ओर के परिवेश में हो रही घटनाओं और परिवर्तनों को जानने का सदैव जिज्ञासु रहा है। वर्तमान में हो रहे वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय अविष्कारों और प्रगति में मानव पर्यावरण को काफी हद तक प्रभावित किया है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने मनुष्य को एक ओर उन्नत जीवन के अनेक साधन उपलब्ध कराए हैं तो दूसरी ओर पर्यावरणीय चुनौतियां भी खड़ी की हैं। मनुष्य ने कृषि, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा, यातायात एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की है। लेकिन दूसरी ओर पर्यावरणीय समस्याओं ने विश्वव्यापी स्तर पर विस्तार भी ग्रहण कर लिया है। आज प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं में वायु, जल, एवं मिट्टी प्रदूषण के साथ-साथ खाद्य पदार्थों के प्रदूषित होने के खतरे बढ़ रहे हैं। इसके अलावा ओजोन क्षय, भूतापन, हरित भवन प्रभाव, संसाधनों का विनाश आदि ऐसी पर्यावरणीय समस्याएं हैं जिनके बारे में जनसामान्य को जागृत करना बहुत आवश्यक है। पर्यावरण और सतत् विकास वर्तमान युग की मांग है।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में जहां पर्यावरणीय चेतना के विकास में शिक्षा-साक्षरता का महत्व है वहीं इस चेतना के विस्तार में जनसंचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। अब विकास और पर्यावरण एक दूसरे के परस्पर विरोधी नहीं बल्कि समपूरक कैसे बने, यह विश्वव्यापी चिंतन का विषय है। जनसंचार माध्यम समाज को गतिशील बनाते हैं, वे उन मूल्यों की रक्षा करते हैं जो एक स्वास्थ्य और क्रियाशील समुदाय के लिए आवश्यक हैं। आज पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण प्रबंधन और सतत् विकास की दिशा में व्यापक चेतना जागृत करने और जनसामान्य को पर्यावरणीय आचार (Environment Ethic) से संस्कारित करने का दायित्व शिक्षा की विभिन्न विधाओं और संस्थाओं के साथ-साथ जनसंचार माध्यमों का भी है। इसके अलावा पर्यावरणीय नीतियों के निर्धारण और नियोजन में जनसामान्य की सहभागिता तभी प्रभावी बन सकती है। जब उन्हें पर्यावरणीय मुद्दों पर पर्याप्त जानकारी प्रदान की जाए। यह कार्य भी जनसंचार माध्यमों का है। जनसंचार माध्यम वैश्विक, क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर संपन्न होने वाली पर्यावरणीय घटनाओं, समाचारों और सूचनाओं को जनसामान्य तक इस ढंग से पहुँचाए कि वे तथ्यों का सही विश्लेषण कर अपना मत व्यक्त कर सकें।

7.2 पर्यावरण की अवधारणा

पर्यावरण की अवधारणा बहुत व्यापक है। पर्यावरण वह समग्रता है जिसमें सभी जैविक और अजैविक घटकों का समावेश है। इसी अर्थ में ई.जे. रास ने मत व्यक्त किया है कि - 'पर्यावरण कोई भी बाह्य शक्ति हो सकती है जो हमें प्रभावित करती है। वस्तुतः पर्यावरण के अन्तर्गत जैविक और अजैविक घटकों के साथ-साथ मानव क्रियाओं के सभी स्वरूपों का भी समावेश है जिससे मानव पर्यावरण का निर्माण होता है।

पर्यावरण की अवधारणा के सन्दर्भ में क्रैम्ब्रिज एनसाइक्लोपीडिया (1990) में कहा गया- "किसी स्थान की वे परिस्थितियाँ जिनमें एक जीवधारी रहता है पर्यावरण है। बडी संख्या में पर्यावरण के विविध प्रकार (जैसे नगरी पर्यावरण, ट्रापिकल रेन फोरेस्ट पर्यावरण) किसी एक परिभाषा का निर्माण असंभव बना देते हैं। सामान्य तौर पर भौतिक पर्यावरण किसी भू- भाग (जलवायु, भूमि) की विशेषताओं का वर्णन करता है जो कि मानव प्रभाव द्वारा उत्पन्न परिवर्तनों से अछूता रहता है जबकि भौगोलिक पर्यावरण के साथ उसमें किसी भी रूपान्तरण (कृषि व्यवस्था, औद्योगीकरण, नगरीकरण) का समावेश है। जीवधारियों और उनके पर्यावरण के मध्य का संबंध परिस्थितिकीय के विषय के भाग का निर्माण करती है।

7.2.1 पर्यावरण के घटक

पर्यावरण के समग्र घटकों को जैविक और अजैविक घटकों में विभक्त किया जा सकता है। जैविक घटकों के अन्तर्गत सभी प्रकार की वनस्पति, पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं का समावेश कर सकते हैं। अजैविक घटकों के अन्तर्गत उन सभी भौतिक तत्वों और पदार्थों का समावेश है जिनमें जीवन नहीं है। अजैविक घटकों में वायु, जल, मिट्टी और अन्य ठोस, द्रव्य व गैसीय पदार्थों का कर सकते हैं। जैविक और अजैविक घटकों की बीच परस्पर अन्तः क्रिया

चलती रहती है। जैविक घटकों का पर्यावरण के अजैविक घटकों का प्रभाव और अजैविक घटकों का जैविक घटकों पर प्रभाव मिलकर एक विशेष पर्यावरण का निर्माण करता हैं। इस तरह की परस्पर क्रियाओं और गतिविधियों का अध्ययन विज्ञान की शाखा पारिस्थितिकी के अन्तर्गत किया जाता है।

7.2.2 पर्यावरण का संगठन

पर्यावरण का संगठन अत्यधिक जटिल और व्यापक हैं। इसके संगठन में जो प्रमुख घटक हैं उन्हें सौर मंडल, भूमंडल, वायुमंडल और जैवमंडल के रूप में जाना जाता है। इन सभी मंडलों का परस्पर प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता है। पर्यावरण के इन घटकों में परिवर्तन का प्रभाव सभी घटकों पर पड़ता है। अत: पर्यावरणीय संगठन एक जटिल अवधारणा है।

7.2.3 पर्यावरण प्रदूषण एवं क्षय

पर्यावरणीय घटकों को मानव क्रियाओं ने बहुत ज्यादा प्रभावित किया है। विश्वभर में मानव जनसंख्या में वृद्धि, औद्योगिक विकास और अन्य विकास जन्य क्रियाओं के फलस्वरूप पर्यावरणीय क्षय और प्रदूषण की समस्याएं उग्र होती जा रही हैं। वर्तमान में वायु, जल, मृदा आदि बुनियादी तत्वों के प्रदूषित होने से खाद्य पदार्थ तक प्रदूषित हो गए हैं। इसके अलावा ओजोन क्षय वन एंव वन्य जीवन का विनाश, भूतापन, हरित भवन प्रभाव, प्राकृतिक संसाधनों का क्षय और प्रदूषण आदि ऐसी समस्याएं हैं जिनके कारण समग्र पर्यावरण प्रभावित हो रहा है। पर्यावरणीय क्षय और प्रदूषण का प्रभाव न केवल मानव स्वास्थ्य पर पड़ रहा है बलिदक समग्र जैव मंडल प्रभावित हो रहा है।

7.3 जनसंचार की अवधारणा

'जनसंचार' आंग्ल भाषा के दो शब्दों 'मास कम्यूनिकेशन' (Mass Communication) से बना है। 'मास' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1930 के दशक के आसपास हुआ। यह एक मूल्य युक्त तथा विरोधाभासी शब्द है। इस शब्द का सर्वप्रथम औपचारिक प्रयोग हरबर्ट ब्लूमर ने अपने एक लेख में किया था। इस शब्द को समूह, भीड़ तथा जनता के भिन्न अर्थ में प्रयोग किया गया था। वस्तुत: इस शब्द का प्रयोग सिनेमा तथा रेडियो के श्रोताओं के संदर्भ में प्रारंभ किया गया। यह व्यापक रूप से फैले हुए विषमाँग (Hetrogrenous) समुदाय का प्रतीक है। इसके अन्तर्गत अनेक व्यक्तियों, विभिन्न तथा सभी प्रकार की सामाजिक प्रस्थितियों (Status) के लोगों और जनांकीय समूहों (Demograpic Groups) आदि का समावेश कर सकते हैं किन्तु कभी-कभी समान हितों या रुचियों के आधार पर यह लोग समांग (Homogenous) भी हो सकते हैं।

वर्तमान समय में जनसंचार के माध्यमों का विकास एक नए युग को लेकर आया है। इस युग की विशेषता सूचना क्रान्ति है। जनसंचार का विकास कई अवस्था से गुजर कर वर्तमान स्थिति में पहुँचा है जिसका प्रभाव मनुष्य के सामाजिक जीवन पर पड़ा है। मानव संचार चिन्हों और प्रतीकों से गुजरता हुआ जनसंचार के इस युग तक पहुँचा है जिससे अब उसके जीवन का

कोई भी पक्ष अछूता नहीं रहा है। वर्तमान जनसंचार माध्यमों की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनमें अभिव्यक्ति, वेग, स्थायित्व और व्याप्ति या विस्तार पहले की अपेक्षा ज्यादा कुशलता के साथ हैं। वस्तुत: संचार माध्यमों ने विश्व को एक वैश्विक ग्राम (Global Village) बदल दिया है। इन माध्यमों के सामाजिक जीवन पर दोनों प्रकार के प्रभाव हैं -सकारात्मक एवं नकारात्मक।

मानव साहचर्य के लिए जनसंचार आवश्यक है। जनसंचार की मुख्य भूमिका में लोगों के मस्तिष्क में नए विचारों को रोपना है। वाय. वी. लक्ष्मण ने मत व्यक्त किया है- "यह संचार है जिसके द्वारा लोग नए विचारों को सीख सकते हैं परिवर्तन के लिए उत्प्रेरित किये जाते हैं जो उनको सम्प्रेषित किया गया है, चारों ओर जो घटित हो रहा है, यदि कोई अपने संसार के बाहर हो रहे परिवर्तनों के प्रति सचेत नहीं है तो वह उन अवसरों से वंचित हो सकता है। अच्छा जनसंचार वह है जिसमें केवल एक पक्षीय सूचना और आदेश न देकर लोगों में समझ का विकास किया जाए"। प्रभावी जनसंचार हेतु निम्न तथ्य आवश्यक है : -

- जनसंचार की आयोजना
- आवश्यकतानुसार विषयवस्तु और पद्धतियों को अपनाना
- अधिकतम प्रभावकारिता हेतु उपयुक्त समय

इस तरह जनसंचार के द्वारा पर्यावरणीय संदेश को उपयोगी विचारों के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिये जिससे लोग अभिप्रेरित होकर पर्यावरणीय संरक्षण और प्रबंधन में सहभागी बन सकें।

7.3.1 जनसंचार प्रक्रिया

जनसंचार का मुख्य उद्देश्य लोगों के व्यवहार में वाछिनीय परिवर्तन लाना है। अत: सफल जनसंचार हेतु कुशल सम्प्रेषक द्वारा उपयोगी संदेश उचित माध्यमों से प्राप्तकर्ता तक पहुँचना चाहिए जिससे वह वांछित प्रत्युत्तर दे सकें। अत: संचार की प्रक्रिया के विभिन्न घटक परस्पर जुड़े हुए हैं तथा जनसंचार की प्रक्रिया कैसे सम्पन्न होती है, यह जानना आवश्यक है। वस्तुत: यह प्रक्रिया उभयपक्षी है। संचार के प्रक्रिया से संबंधित प्रारूप अरस्तू प्रो. लासवेल, विलवर श्राम, डेविस वर्ले आदि अनेक विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत किए हैं। प्रो. लासवेल द्वारा प्रस्तुत जनसंचार की प्रक्रिया ज्यादा व्यावहारिक प्रतीत होती है। उन्होंने इस प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए लिखा है- कौन क्या कहता है, किस माध्यम से कहता है, किससे से कहता है और किस आशय से कहता है आदि तथ्यों को व्यावहारिक और सरल ढंग से प्रस्तुत किया है।

इस प्रक्रिया को निम्नवत समझा जा सकता है।

स्रोत→ संदेश→ माध्यम→ प्राप्तकर्ता→ प्रभाव→ प्रतिपुष्टि

Source → Message → Media → Audience → Result → feedback

7.3.2 जनसंचार के प्रकार

संचार तथा सम्प्रेषण की क्रिया विविध प्रकार से संपन्न होती है। यह प्रक्रिया श्रोता या उपभोक्ता पर निर्भर करती है। अत: जनसंचार के विविध प्रकारों को मौटे तौर पर अन्त: वैयक्तिक संचार (Intra Personal Communication), अन्तर वैयतिक संचार (Inter Personal Communication), समूह संचार (Group Communication) और जन संचार (Mass Communication) के रूप में रख सकते हैं।

अन्त: वैयक्तिक सचार व्यक्ति के आन्तरिक संवेगों और मनोवैज्ञानिक स्तर पर संचारित होती है। जैसे अवलोकन, समस्या निदान, चिंतन, श्रवण, पठन, बोलने-लिखने तथा उपयोग हेतु सूचना की खोज आदि अनेक क्रियाओं के द्‌वारा सूचना का प्रसंस्करण (Processing)ए किया जाता है। अत: यह संचार वैयक्तिक स्तर पर होता है। जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच संचार प्रक्रिया संपन्न होती है तो उसे अन्तर वैयतिक संचार कहते हैं। किन्तु जब यह प्रक्रिया एक समूह में संपन्न होती है तब समूह संचार की संज्ञा दी जाती है। किन्तु यत्र-तत्र, बिखरे हुए अपार जन समूह के मध्य व्यापक ढंग से सूचइत, संदेशित, प्रबोधित, एकत्रित आदि कार्य के लिए जिस संचार प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। उसे जनसंचार (Mass Communication) कहते है। जनसंचार की अवधारणा के अन्तर्गत जन की व्याख्या पूर्व में की जा चुकी है।

7.3.3 जनसंचार के माध्यम

जनसंचार के विविध माध्यम हैं जो मौखिक सम्प्रेषण से लेकर इलेक्ट्रोनिक नडिया तक की एक लम्बी विकास यात्रा के दौर से गुजरे है। इन माध्यमों के विकास में प्रौद्‌योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन जनसंचार माध्यमों को कई प्रकार से समझ सकते है, जैसे मौखिक जनसंचार माध्यम एवं मुद्रित जनसंचार माध्यम, आधुनिक जनसंचार माध्यम और परम्परागत जनसंचार माध्यम। यहाँ अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से आधुनिक जनसंचार माध्यमों को मुद्रित माध्यम (समाचारपत्र-पत्रिकाएं), रेडियो, दूरदर्शन, फिल्म इंटरनेट और मल्टीमीडिया आदि के रूप में समझा जा सकता है। ये सभी माध्यम सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम बनते जा रहे हैं। अत: स्वाभाविक है कि इनके उपयोग पर्यावरणीय जानकारी, पर्यावरणीय शिक्षा, जागरुकता और मनोरंजन के क्षेत्र में भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इनके द्‌वारा पर्या-पर्यटन (Ecotourism) पर्या-विकास (Eco-development), वन एंव वन्य जीवन संरक्षण के क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी जानकारी प्रदान की जा सकती है। इन सभी माध्यमों की पर्यावरणीय संचार में भूमिका का विवेचन आगे किया गया है।

7.3.4 जनसंचार के कार्य

सभी प्रकार के मानवीय साहचर्य के लिए संचार अपरिहार्य है। डॉ. जे. पाल लीगन्स ने प्रस्तुत किया है- विश्व ने ऐसा समय कभी नहीं देखा है जब संचार की भूमिका का इतना महत्व रहा हो जितना कि अब है। ऐसा इसलिये है कि विश्व ने ऐसा समय कभी नहीं देखा है जब

इतना ज्यादा जानने के लिए था, इतना ज्यादा जानने की लोगों की जरूरत पड़ी हो, और इतने ज्यादा लोगों को इतना ज्यादा और इतना जल्दी जानने चाहते हों, पर्यावरण के क्षेत्र में जनसंचार के महत्व और प्रकार्यों की विवेचना करने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम इस बात से अवगत हो जाए कि सामान्य तौर पर जनसंचार के कौन-कौन से कार्य है। जनसंचार के बिना मानव समाज की स्थापना संभव ही नहीं है। जिस प्रकार जीवित रहने के लिए किसी प्राणी को हवा, पानी और भोजन की आवश्यकता होती है वैसे ही सामाजिक अन्त: क्रिया और विकास के लिये संचार की आवश्यकता है। जनसंचार के कार्यों के बारे में विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से विचार व्यक्त किए हैं। ली थायर ने संचार के निम्न कार्यों का उल्लेख किया है -

1. सूचनात्मक प्रकार्य (Informational Function),
2. आज्ञा और अनुदेशात्मक प्रकार्य (Command and Instructive Functions)
3. प्रभाव और अनुसरणात्मक प्रकार्य (Influence and Persuasive Functions)
4. एककिरणात्मक प्रकार्य (Integrative Function)

अत: संचार और जनसंचार माध्यमों की वैयक्तिक तथा सामाजिक स्तर पर बहुआयामी भूमिका है। डिकर्सन (Dickerson) ने इस संदर्भ में कहा है- 'यदि अर्थव्यवस्था का जीवन रक्त व्यापार है तब दूरसंचार को अर्थ व्यवस्था और समाज दोनों का सच्चे अर्थ में स्नायुतंत्र समझा जाना चाहिये।' प्रो. लासवेल का मत है कि जनसंचार माध्यम समाज को गतिशील बनाते हैं, समाज में विभिन्न संबंध स्थापित करते हैं तथा विभिन्न सामाजिक संबंधों और गतिविधियों को प्रचारित -प्रसारित तथा हस्तांरित करते हैं। विलवर श्राम जनसंचार माध्यमों को एक प्रहरी, मंच तथा शिक्षक के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार जनसंचार माध्यम एक सजग प्रहरी के तरह पूर्वानुमान द्वारा खतरों से आगाह कराते हैं, विचारों को सकारात्मक बनाने के लिए उचित मंच प्रदान करते हैं और एक शिक्षक की भांति विकास में सहायक होते हैं।

वस्तुत: जनसंचार का प्रमुख कार्य लोगों को सूचनाएं देना, मनोरंजन उपलब्ध कराना, शिक्षा के नए द्वार खोलना, लोगों में समसामयिक समस्याओं के प्रति चेतना जागृत करना तथा विकास हेतु उनकी मानसिक क्षमताओं को विकसित करना है। इसके अलावा जनसंचार माध्यम सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्तमान समय में जनसंचार माध्यमों से समाज का कोई भी पक्ष अछूता नहीं रहा है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं जीवन के अन्य क्षेत्रों में हो रहे परिवर्तनों और घटनाओं को जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत करने का दायित्व जनसंचार माध्यमों का है। जनसंचार माध्यम राष्ट्रीय नीतियों और कार्यक्रमों के लिए अनुकूल वातावरण और जनमत तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जहां संचार माध्यमों के अनेक कार्य सकारात्मक हैं वहीं कुछ कार्य नकारात्मक भी हैं। इसलिए सोवेरिन और टेंकर्ड (Severin, Werner J, & Tankard, James W. Jr.) ने अपनी पुस्तक 'कम्यूनिकेशन थ्योरीज' (Communication Theories) में संचार के प्रकायों तथा अकार्यों का विस्तृत वर्णन किया है।

7.3.5 जनसंचार का क्षेत्र

जनसंचार का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है जैसे-जैसे संचार और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति हो रख, है, जनसंचार पगे जनसंचार क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है। मुद्रण से लेकर भू-उपग्रह संचार तक के विकास ने जनसंचार के क्षेत्र को नये-नये आयाम दिये। डॉ. विजेट लोवी (Vincent Lowe) ने जनसंचार के प्रमुख अध्ययन क्षेत्र को निम्न चिन्हित किया है।

1. विज्ञान संचार (Science Communication)
2. प्रबन्धन संचार (Management of Communication)
3. फिल्म एवं वीडियो संचार (Film and Video Communication)
4. विकास संचार (Development Communication)
5. फिल्म निर्माण (Film Making)
6. शैक्षिक प्रौद्योगिकी एवं संचार (Educational Technology & Communication)

जनसंचार के नए-नए क्षेत्र उदित हो रहे हैं इनमें पर्यावरण संचार एक महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं।

7.4 पर्यावरण और जनसंचार

अवधारणात्मक स्पष्टता हेतु इसके पूर्व पर्यावरण ओर जनसंचार की व्याख्या प्रस्तुत की गई थी। यहाँ इन दोनों के परस्पर संबंधों का विवेचन किया जा रहा है। जनसंचार माध्यमों का कार्य मात्र लोगों तक पर्यावरणीय सूचना का सम्प्रेषण नहीं है बल्कि उन्हें पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति जागरुक बनाकर पर्यावरण हेतु तैयार करना भी है। जनसंचार के पर्यावरण संरक्षण में सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का विश्लेषण करना यहाँ प्रासंगिक है। पर्यावरण शिक्षा एक अन्य क्षेत्र है जहां जनसंचार माध्यमों की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है। मैकब्राइड आयोग ने बहुत पहले व्यक्त किया था- "संचार मात्र एक जनसूचना तंत्र नहीं है बल्कि शिक्षा और विकास का एक अभिन्न अंग है और शिक्षा और संचार नीतियों का अनुप्रयोग एक दूसरे के पूरक हैं।" इस दृष्टि से जनसंचार माध्यमों पर्यावरणीय शिक्षा के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

भारत जैसे विकासशील देश में विकास की अनेक समस्याऐं हैं जिनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संबंध पर्यावरण से हैं। सांस्कृतिक और भाषागत विविधता के कारण राष्ट्रीय पर्यावरणीय नीतियों और कार्यक्रम के प्रति स्वास्थ्य जनमत तैयार करना आसान कार्य नहीं है। लेकिन जनसंचार के द्वारा यह कार्य संभव है। पर्यावरणीय नीतियों के क्रियान्वयन हेतु जनभागीदारी और अनुकूल वातावरण बनाने में रेडियो, दूरदर्शन, प्रकाशन विभाग, फिल्म, पत्र-पत्रिकाओं और लोक माध्यम उपयोगी भूमिका निभा सकते हैं। देश में विकास संबंधी समस्याओं में उच्च जन्मदर एवं मृत्युदर, निर्धनता, निरक्षता और कुपोषण आदि ऐसी समस्याएं हैं जो व्यक्तिगत और राष्ट्रीय विकास में अवरोध पैदा करती हैं। इनके प्रति लोगों में चेतना जागृत कर उन्हें अपने स्वयं के उत्थान हेतु आगे जाना जनसंचार का कार्य है। पर्यावरण संरक्षण और प्रबंध में जनसंचार की भूमिका जिन क्षेत्रों में प्रभावकारी हो सकती है, उनमें पर्यावरणीय अवधारणा का प्रसार, पर्यावरणीय जागरुकता और शिक्षा, पर्यावरणीय नीतियों के लिये अनुकूल जनमत का

निर्माण, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, प्रदूषण नियंत्रण, जनसंख्या परिसीमन, कृषि और औद्योगिक विकास, सतत् विकास और मानवीय मूल्यों का प्रयास आदि मुख्य हैं।

7.4.1 पर्यावरण संरक्षण हेतु जनमत निर्माण

पर्यावरण संरक्षण और संवर्धन हेतु अनुकूल जनमत का निर्माण करना पर्यावरणीय संचार का एक अन्य क्षेत्र हैं। पर्यावरणीय संरक्षण तभी संभव है जब लोगों में पर्यावरण के प्रति जागरुकता हो। इसी के साथ जनसामान्य में पर्यावरणीय मुद्दों पर एकमत आवश्यक है। जनसंचार माध्यम जनमत निर्माण में प्रभावी भूमिका रखते हैं। इस दृष्टि से पर्यावरण के विभिन्न पक्षों पर प्रेस रिलीज, स्थानीय आकाशवाणी / दूरदर्शन पर वार्ता, सम्पादक को पत्र, रूपक लेखन, स्थानीय समाचारपत्रों में सम्पादकीय, व्याख्यान मालाएं आयोजित करना, पर्यावरणीय मुद्दों पर विशेष आयोजन, पर्यावरणीय कार्यक्रमों में प्रमुख व्यक्तियों ३ऊकड़ा सहभागिता के अलावा पर्यावरणीय संरक्षण से संबंधित डाक्यूमेन्ट्री फिल्मों का प्रदर्शन आदि उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

7.4.2 सतत् विकास और जनसंचार

प्रत्येक और समाज अपने देशवासियों की बुनियादी एवं अन्य आवश्यकताएं पूरी कर उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना चाहता है। अत: विकास की अपरिहार्यता को नकारा नहीं जा सकता है। पोषण, वस्त्र, आवास, और अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये मनुष्य द्वारा पर्यावरणीय संसाधनों का रूपान्तरण आवश्यक है। चूंकि प्राकृतिक संसाधन पूर्णनीय और अपूर्णनीय दोनों प्रकार के होते हैं अर्थात् कुछ संसाधन ऐसे हैं जिनका नवीनीकरण संभव नहीं है। अत: ऐसे संसाधनों के उपभोग की अपनी सीमाएं हैं। दूसरी ओर जो संसाधन नवीनीकरण या पूर्णनीय हैं उनके भी उपभोग की सीमा आवश्यक है। कहने का तात्पर्य है कि संसाधनों का उपयोग और उपभोग इस तरह किया जाना चाहिये कि वे पूरी तरह समाप्त न हो, उनका क्षय न हो और उनकी गुणवत्ता बनी रहे। इस संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र द्वारा गठित पर्यावरण और विकास आयोग की रिपोर्ट ' अवर कॉमन पयूचर' (Our Common Future :1987) में सतत विकास की अवधारणा प्रस्तुत की गई। इसके अनुसार 'ऐसा विकास जो भावी पीढ़ियों की जरूरतों को पूरा करने की सामर्थ्य को सकट में डाले बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकता को पूरा करता है। 'सतत् विकास की यह अवधारणा कई क्षेत्रों में उपयोगी है। जनसंचार माध्यम इस अवधारणा के प्रचार-प्रसार में अत्यन्त सहायक हो सकते हैं। आज वन एवं वन्य जीवन, जलीय जीव-जन्तुओं सहित समग्र जैव विविधता खतरे में है। इस स्थिति से उबरने के लिये सतत विकास की अवधारणा को व्यावहारिक जीवन में उतारने की आवश्यकता है।

7.4.3 प्राकृतिक आपदाएं और जनसंचार

विश्व के सभी क्षेत्रों में प्राकृतिक आपदाएं आती हैं जिनसे अपार जन- धन की हानि होती है। आग, बाढ़, सूखा, भूस्खलन, हिमस्खलन, भूकंप, ओलावृष्टि एवं चक्रवात आदि

प्राकृतिक आपदाओं से न केवल आर्थिक नुकसान होता है बल्कि पर्यावरणीय क्षति और प्रदूषण के साथ-साथ विकास कार्य भी प्रभावित होते हैं। भारत में विगत वर्ष गुजरात का भूकंप, उड़ीसा में तूफान और बाढ़ आदि ने इन क्षेत्रों में करोड़ों रुपयों की क्षति पहुँचाई। खड़ी फसलें बर्बाद हो गई। वन जीवन की क्षति का तो कोई अनुमान ही नहीं है।

आपदा प्रबंधन में जनसंचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। सेटेलाइट सेवाओं के प्रारंभ होने से प्राकृतिक आपदाओं का बहुत कुछ पूर्वानुमान लगाना संभव है। इससे जनता को जागृत करने में सहायता मिलती है जिससे लोग अपने बचाव के संभव उपाय कर सकते हैं। अब सेटेलाइट द्वारा वन, आग, चक्रवात, कम दबाव के क्षेत्रों, तूफान की गति, समुद्री तूफानों की दिशा आदि के संबंध में काफी जानकारी प्राप्त हो सकती है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित आपदा निवारण दशक (1990- 2000) में इस बात पर जोर दिया गया कि प्राकृतिक आपदाओं के पूर्वानुमान हेतु चेतावनी तंत्र की स्थापना की जाए। इन आपदाओं से संबंधित आकलन, पूर्वानुमान, निवारण एवं निराकरण हेतु लोगों को वर्तमान एवं नई जानकारी प्रदान की जाए। यह सभी कार्य संचार माध्यमों के द्वारा संभव है। आपदा अनुसंधान कार्य में भी जनसंचार माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण हैं। अन्तराष्ट्रीय भूमंडल- जैवमंडल कार्यक्रम (International Geosphere-Biosphere Programme के अंतर्गत पृथ्वी के भौतिक पर्यावरण और अंत:क्रियात्मक प्रक्रियाओं पर बल दिया जाता है। पर्यावरण के भूस्थलीय, समुद्री और वायुमंडलीय घटकों के मध्य होने वाली प्रक्रियाओं के अध्ययन से पर्यावरणीय एवं जलवायुगत परिवर्तनों की प्रकृति को जानने में सहायता मिलती है। इन घटकों का अध्ययन विभिन्न तकनीकों से किया जाता है जिसमें दूर संवेदी एवं पर्यावरणीय मानीटिरिंग आदि मुख्य हैं। आपदा प्रबंधन की राष्ट्रीय, राज्यस्तरीय और सीनीय रणनीति में तालमेल बनाए रखने का साधन जनसंचार माध्यम हैं।

7.4.4 संसाधन प्रबंधन और जनसंचार

प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल, मिट्टी, वायु एवं वन और वन्य जीवन संरक्षण आदि का प्रबंधन तब तक संभव नहीं है जबकि इन कार्यों में सामुदायिक सहभागिता न हो। संसाधन प्रबंधन हेतु सर्वप्रथम संसाधन नीति तैयार की जाना चाहिए। तत्पश्चात् संसाधन नियोजन और प्रबंधन कार्यों को क्रियान्वित किया जाए। इस हेतु लोगों में जागरुकता और जानकारी सम्प्रेषित करने का कार्य जनसंचार माध्यम का है। इसी तरह जलग्रहण क्षेत्र विकास (Watershed Development), घरेलू जलसंरक्षण, कृषि एवं औद्योगिक जलसंरक्षण, भूमि सुधार और प्रबंधन, बंजर भूमि विकास आदि ऐसे कार्यक्रम हैं, जिनके प्रति व्यापक जनचेतना जागृत करने की आवश्यकता है। इस हेतु जनसंचार माध्यमों दारा लोगों तक पर्यावरणीय जानकारी पहुँचाए जाने को प्राथमिकता दी जाना चाहिए।

7.4.5 जनसंचार का पर्यावरण पर दुष्प्रभाव

जनसंचार माध्यमों पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में जहां सकारात्मक बिन्दुओं का विश्लेषण और विवरण प्रस्तुत किया गया वहीं इसके पर्यावरण पर पड़ने वाले कुछ नकारात्मक

प्रभाव भी हैं। जनसंचार माध्यम विज्ञापन के माध्यम से लोगों में उपभोक्ता वस्तुओं की कृत्रिम मांग पैदा करते हैं जिससे पर्यावरण के निर्थक दोहन को बल मिलता है और संरक्षणवादी, मूल्यों का ह्रास होता है। जनसंचार माध्यम उपभोक्तावादी मूल्यों और जीव शैली का प्रचार-प्रसार करते हैं। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति ने परम्परागत समाजों के जीवन मूल्यों पर कुठारघात किया है। विकासशील और निर्धन देशों के पास न तो पर्याप्त पर्याप्त संसाधन हैं और न ही उन्नत प्रौद्योगिकी। ऐसी स्थिति में पाश्चात्य और विकसित देशों की जीवन शैली को अपनाना उसके लिए अपने अवरुद्ध करना। जनसंचार माध्यम इस तथ्य झुठलाकर उपभोक्तावादी जीवन शैली का भ्रामक प्रचार करते हैं।

पर्यावरण और जनसंचार

आज का युग जनसंचार का है। जनसंचार माध्यमों ने मानव जीवन के विविध पक्षों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। अत: इनकी पर्यावरण के प्रति जन सामान्य में चेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका है। पर्यावरणविद निकलास पालुनिन (Nicklas Polunin) ने शब्दों में 'एक मानवीय प्राणी के लिये अपने पर्यावरण की विवेकपूर्ण समझ उसे बचाने की एक पूर्व शर्त है।" अत: पर्यावरणीय चेतना तथा समझ के विकास में जन संचार माध्यमों के अनेक प्रकार्य हैं जिन्हें संक्षेप में निम्नवत समझा जा सकता है -

1. पर्यावरण के प्रति व्यक्ति को संवेदनशील बनाना जनसंचार माध्यमों का पहला कार्य है।
2. प्रमुख पर्यावरणीय समस्यायें मानव प्राणियों एवं पशुओं की जनसंख्या विस्फोट और विकास से सम्बन्धित प्रभावों के कारण उत्पन्न हुई है। इस समस्याओं से वन विनाश और समग्र पीरस्थितिक व्यवस्था की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया है। इसी तरह मानव एवं औद्योगिक अपशिष्ट प्रदूषण का मुख्य कारण है।
3. पर्यावरण के सन्दर्भ में नीति निर्धारकों से लेकर ग्रामीण जनता तक की भागीदारी होना चाहिए। इसमें शिक्षितों से लेकर निरक्षर व्यक्ति तक सम्मिलित हैं। अत : जनसंचार माध्यमों द्वारा जो संदेश प्रसारित किए जाए वे वर्गीकृत हों तथा विविध हितग्राहियों तक पहुँच सकें।
4. पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति विभिन्न व्यक्तियों का बोध या समझ अलग-अलग होती है। अत: लोगों की बुनियादी जरूरतों तथा उनकी पूर्ति आवश्यक है। उदाहरण के तौर पर वन्य जीव संरक्षण लें, उन्हें इनके संरक्षण से उतना मतलब नहीं है जितना कि वनोपज से है। वे वन्य जीवों को हिंसक तथा मानवघाती मानते हैं। अत: मूल प्रश्न है पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति बोध की समरूपता उत्पन्न करना जो संचार माध्यमों से ही संभव है। इससे पर्यावरण संरक्षण के उद्देश्यों में समानता का दृष्टिकोण भी विकसित होगा।
5. लोगों तक पर्यावरण संदेश सम्प्रेषित करने हेतु संचार प्रौद्योगिकी ऐसी हो जो नगरों से गांवों तक पर्यावरणीय जानकारी भेज सके। अत: इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के जनसंचार माध्यमों का समावेश किया जाए।

6. एक निश्चित लक्ष्य समूह तक कुछ विशेष संदेश भी सप्रेषित किये जाना चाहिए, जैसे परिवार नियोजन एवं कल्याण कार्यक्रम संदेश, क्योंकि जनसंख्या विस्फोट सर्वाधिक घातक पर्यावरणीय समस्या है। इसी तरह वन विनाश, व्यक्तिगत स्वच्छता, सार्वजनिक एवं सामुदायिक स्वच्छता, मानवीय अपशिष्ट से जल प्रदूषण तथा पेयजल के प्रदूषित होने की समस्याओं एवं खतरों के प्रति अलग- अलग सूचनायें व संदेश विभिन्न हितग्रहियो को सम्प्रेषित किए जा सकते हैं।
7. मौखिक सम्प्रेषण आज भी सर्वाधिक प्रभावी है। शांति घाटी तथा चिपको आन्दोलनों में मौखिक सम्प्रेषण की भूमिका महत्वपूर्ण थी। अत: आधुनिक प्रौद्योगिकी के साथ परम्परागत संचार माध्यमों का प्रयोग किया जा सकता है।

संचार माध्यमों की पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में भूमिका के बारे में के.एन. पाण्डे तथा अन्य का मत है- 'पर्यावरणीय संसाधनों का नियोजित उपयोग ही मानव प्रजाति के आस्तित्व के संरक्षण का एक मात्र उपाय है। इस उद्देश्य से पर्यावरण की भूमिका और पर्यावरणीय मुद्दों के बारे में लोगों के बीच सतत शिक्षा की आवश्यकता है ताकि जन सामान्य में व्यावहारिक परिवर्तन लाया जा सके। इस सन्दर्भ में दूरदर्शन एवं आकाशवाणी बहु त महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं और हमारे पर्यावरण के उन्नयन में सहायता कर सकते हैं। वस्तुत: संचार और शिक्षा एक ही सिक्के के दो पहलु हैं जिनका उद्देश्य जानकारी और ज्ञान का लोगों तक सम्प्रेषण करना है जिससे उनके व्यवहार को वांछित दिशा में मोड़ा जा सके'।

संचार वृहद सामाजिक- आर्थिक व्यवस्था की उप व्यवस्था है। वस्तुत: सूचना का प्रवाह स्वतंत्र नहीं होता है। वे संस्कृति और समाज के माध्यम से पहुँचती हैं। चूंकि समाज का निर्माण शून्य में नहीं होता है बल्कि यह एक अन्तःक्रियात्मक व्यवस्था है जो संस्कृति एवं सामाजिक संरचना से प्रतिबद्ध हैं। इस दृष्टि से आधुनिक संचार विशेषज्ञों का मत है कि संचार का लक्ष्य सामाजिक परिवर्तन है। यह संचार है जिसके माध्यम से लोग नए विचारों को सीख सकते हैं; उन्हे परिवर्तन के लिए उत्प्रेरित किया जा सकता है एवं उनके चारों ओर जो घटित हो रहा है उसको सम्प्रेषित कर उन्हें सहभागी बनाया जा सकता है।

एल्विन टॉफ्लर ने अपनी पुस्तक 'द थर्ड वेव' में संचार माध्यमों के वर्तमान युग में महत्व को लहर के रूप में प्रतिपादित किया है। मानव सभ्यता में परिवर्तन की पहली लहर उस समय आई जब गुफाओं में रहने वाले घुमक्कड़ आदि मानव ने कृषि कार्य करना प्रारंभ किया। कृषि के कारण उसकी आवश्यकतायें बदल गयीं। जहां वह पहले भोजन की तलाश में भटकता था वहीं अब वह कृषि से न केवल अपना भाषण-पोषण करने लगा बल्कि आराम से अपना पारिवारिक जीवन भी व्यतीत करने लगा।

मावन जीवन में दूसरी लहर तब आई जब अट्ठारहवीं सदी में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाने लगा। इससे उपभोग और उत्पादन शैली में बदलाव आया इस हेतु सुदूर व्यक्तियों तथा संगठनों से सम्पर्क हेतु डाक, तार एवं दूरभाष आदि संचार माध्यमों के आविष्कार की जरूरत पड़ी। नये-नये उद्योग तथा कल-कारखानों की स्थापना से औद्योगिकरण को व्यापक आधार मिला। इसके लिए श्रमिकों की

आवश्यकता पड़ी। फलत: प्रौद्योगिकी पर आधारित जनसंचार माध्यमों जैसे पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो तथा दूरदर्शन का विकास संभव हुआ। औद्योगिक क्रांति के कारण मानव समाज में जो परिवर्तन आये वे बड़े व्यापक थे। रोजगार की तलाश में लोग घर-परिवार छोडकर नये स्थानों नगरों तथा सुदूर देशों की ओर जाने लगे। संयुक्त परिवार प्रथा टूटने लगी और लघु तथा केन्द्रीय परिवारों का प्रचलन बढा। प्राथमिक सम्बधों के स्थान पर द्वितीयक सम्बन्ध ज्यादा व्यापक हो गये।

टॉफ्लर के अनुसार संचार माध्यमों में क्रांति और प्रौद्योगिकीय प्रगति के कारण मानव सभ्यता में परिवर्तन का तीसरा दौर प्रारम्भ हुआ। इस परिवर्तन की लहर को आज महत्वपूर्ण माना जा रहा हैं। इस लहर के कारण विश्व समुदाय सिमट गया है, लोग एक-दूसरे के निकट आ गए और उनकी जीवन शैली में भी परिवर्तन आ रहा है। इस तरह देखा जाए तो संचार क्रांति ने मनुष्य के समग्र परिवेश को प्रभावित किया है। (पर्यावरण संचार, शिक्षा और प्रबंधन)

7.5 पर्यावरणीय संचार के माध्यम

पर्यावरणीय संचार दो शब्दों से मिलकर बना है पर्यावरण एवं संचार। इस दृष्टि से पर्यावरणीय संचार का शाब्दिक अर्थ पर्यावरणीय चेतना, जानकारी और समझ विकसित करने की प्रक्रिया से है। यह एक विकासशील आवधारणा है जिसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती है। इसका मुख्य कारण यह है कि पर्यावरण और जनसंचार की अवधारणाए स्वयं अभी विकास और निर्माण की अवस्था से गुजर रही हैं। फिर भी अध्ययन की सुविधा हेतु पर्यावरण संचार को निम्नवत परिभाषित किया जा सकता है। व्यापक अर्थ में पर्यावरणीय संचार का आशय ऐसे संचार से है जो पर्यावरण के विविध पक्षों के मध्य अन्त: क्रियात्मक संबंधों का बोध कराता है और पर्यावरणीय समस्याओं के एकीकृत निराकरण के उद्देश्य से व्यक्ति को व्यवहारिक ज्ञान, कौशल और अभ्यास की चेतना प्रदान करता है। पर्यावरणीय संचार का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति में पर्यावरण के प्रति न केवल चेतना जागृत करना है बल्कि पर्यावरणीय क्रिया के प्रति अभिप्रेरित करना भी है जिससे वह पर्यावरण और विकास के मध्य संतुलित दृष्टिकोण का विकास कर सकें।

जनसंचार एक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में घटित होता है। यह परिप्रेक्ष्य जहां जनसंचार माध्यमों को प्रभावित करता है वहीं उनसे प्रभावित भी होता है। अत: एक सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में कौन से जनसंचार माध्यम सफल होंगे इस पर भी विचार करना आवश्यक है। वस्तुत: सामाजिक -सांस्कृतिक मान्यताएं एवं मूल्य संचार माध्यमों के उत्पादन एवं वितरण को प्रभावित करते हैं।

7.5.1 मुद्रित माध्यम

मुद्रण के आविष्कार ने एक नए युग का सूत्रपात किया। जनसामान्य की शिक्षा- दीक्षा में मुद्रित माध्यमों ने क्रान्ति ला दी। शिक्षित जनमानस के मध्य यह माध्यम जनसंचार का सर्वाधिक प्रभावी साधन हैं। इन माध्यमों के अन्तर्गत दैनिक साप्ताहिक पाक्षिक मासिक त्रिमासिक, अर्द्धवार्षिक और वार्षिक पत्र-पत्रिकाओं का समावेश कर सकते हैं। इसके अलावा पोस्टर, चित्र, बेनर तथा पेम्पलेट आदि भी इसके घटक हैं। इस समय देश में 92 भाषाओं और

बोलियों के 35000 समाचारपत्र और पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। आधुनिक संचार माध्यमों में ये पत्र-पत्रिकाऐं लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुरूप सर्वाधिक जीवन्त माध्यम है। पर्यावरणीय संरक्षण के क्षेत्र में इनकी भूमिका अति महत्वपूर्ण हो सकती है। बशर्त कि प्रेस प्रयोजनापरक दृष्टिकोण अपनाए। पर्यावरण संबंधी सूचना के प्रसारण, पर्यावरण संरक्षण हेतु अनुकूल वातावरण का निर्माण, 'पर्यावरणीय कार्यक्रमों के प्रसारण, पर्यावरण संरक्षण और प्रबंध के सफल प्रयोगों के प्रकाशन, अनुभवों का आदान-प्रदान, पर्यावरणीय कार्यक्रमों की सम्यक आलोचना और जनमत तैयार करने में मुद्रित माध्यमों के उपादेयता स्वतः सिद्ध है।

7.5.2 रेडियो

रेडियो जनसंचार माध्यम का सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है जिसका सर्वप्रथम प्रसारण 1909 में अमेरिका में प्रारंभ हुआ था। किन्तु नियमित रूप से प्रसारण कार्य 1920 से प्रारंभ हुआ। भारत में बम्बई रेडियो क्लब द्वारा जून 1923 को प्रथम बार प्रसारण हुआ। तत्पश्चात, व्यवस्थित ढंग से रेडियो प्रस्ताव हेतु भारतीय प्रसारण कम्पनी का गठन किया गया जिसने जुलाई, 1927 में बम्बई और अगस्त, 1927 में कलकत्ता में अपनी प्रसारण सेवाएं प्रारंभ की थीं। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उसने 1920 में बाद इन सेवाओं को बंद कर दिया। तत्पश्चात अप्रैल, 1930 में सरकार ने भारतीय प्रसारण सेवा का गठन किया और बम्बई तथा कलकत्ता आकाशवाणी केन्द्रों को अपने अधिकार में ले लिया। किन्तु यह सेवा भी 10 अक्टूबर, 1931 को बद कर दी गई। इसी बीच 1932 में बी.बी.सी. ने नई सेवा 'एम्पायर सर्विस' प्रारंभ कर दी। तब सरकार से लाईसेंस लेकर रेडियो सेट रखे जाते थे। 1 जनवरी, 1936 को दिल्ली में रेडियो केन्द्र प्रारंभ हुआ। तत्पश्चात लखनऊ (1938), मद्रास (1943) तथा तिरूचि केन्द्र स्थापित किए गए। सन् 1999-2000 तक देश में 198 आकाशवाणी केन्द्र सुचारू रूप से कार्य कर रहे हैं। आकाशवाणी से विविध प्रकार के प्रसारण किए जाते हैं। जिनमें सूचना, शिक्षा मनोरंजन एवं व्यापारिक विज्ञापन आदि मुख्य होते हैं। भारत में कृषि सम्बन्धी अनेक कार्यक्रमों का प्रसारण रेडियो सेवाओं द्वारा किया गया। हरित क्रांति को आगे बढ़ने में रेडियो प्रसारणों की भूमिका आज भी महत्वपूर्ण है। अत: पर्यावरण संरक्षण संबंधी राष्ट्रीय नीतियों एवं कार्यक्रमों, प्रदूषण निवारण के उपायों, कृषि और औद्योगिक विकास, सतत् विकास और पर्यावरणीय जागरुकता एवं शैक्षिक कार्य आदि से संबंधित संदेशों को जन-जन तक पहुँचाने में आकाशवाणी आज भी एक सशक्त माध्यम है।

7.5.3 दूरदर्शन

विगत सदी के 1930 के दशक में दूरदर्शन का उदभव ओर विकास अमेरिका में संभव हुआ। अमेरिका की राष्ट्रीय प्रसारण कम्पनी एन.बी.सी ने सर्वप्रथम न्यूयार्क में एक दूरदर्शन केन्द्र स्थापित किया। तत्पश्चात् ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कम्पनी (बी.बी.सी.) ने लंदन में दूरदर्शन सेवा प्रारंभ की। यद्यपि द्वितीय विश्व युद्ध के कारण दूरदर्शन के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा लेकिन सन् 1950 के दशक तक दूरदर्शन सेवाओं को लोकप्रियता प्राप्त हो गयी। यूरोपीय

देशों सहित कनाडा, अमेरिका और जापान में इसका विस्तार काफी तेजी से हुआ। भारत में दूरदर्शन 15 सितम्बर, 1959 को शैक्षिक उद्देश्य। के साथ प्रारंभ हुआ। दूरदर्शन के क्षेत्र में उस समय क्रान्ति आयी जब 1962 में सेटेलाईट से प्रसारण सुविधा उपलब्ध हुई। तत्पश्चात्(भारत में कृषि विकास हेतु 'कृषि दर्शन' कार्यक्रम प्रसारित किया गया जो बड़ा लोकप्रिय हुआ। आज विश्व के अधिकांश देशों में टेलीविजन सेवाऐं उपलब्ध है।

दूरदर्शन आज जनता के बहुत करीब है। पर्यावरणीय समस्याओं को कम करने में इसकी भूमिका काफी हद तक सहायक हो सकती है। विशेष रूप से कचड़े एवं अवशिष्ट का प्रबंधन, प्रदूषण नियंत्रण, सामाजिक वानिकी, वन्य जीवन संरक्षण, कृषि विकास, जल और भूमि के संरक्षण तथा पर्यावरण हेतु संरक्षणवादी मूल्यों के विस्तार में दूरदर्शन एक सशक्त माध्यम है। वस्तुत: पर्यावरण से जुडी जो भी समस्याएं हैं उनका संबंध जनसंख्या वृद्धि से भी है। अत: जनसंख्या संचार और परिवार कल्याण कार्यक्रमों को केन्द्र में रखकर पर्यावरणीय चेतना का विस्तार दूरदर्शन द्वारा एक बडे क्षेत्र में किया जा सकता है।

7.5.4 फिल्म

भारत में फिल्म उद्योग 100 वर्षों से ज्यादा पुराना हो गया है। फिल्म जनसामान्य को शिक्षा, मनोरंजन और जानकारी प्रदान करने का एक अच्छा माध्यम है। इसी तरह फिल्मों की भूमिका सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के प्रसार के साथ- साथ स्वस्थ जनमत तैयार करने में सहायक है। भारत में 1930 के दशक में सवाक फिल्मों की शुरूआत हुई। इसके बाद देश में भारतीय जीवन के विविध पक्षों पर बड़ी अच्छी फिल्में तैयार की गई जिन्हें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त हुई। आज भारत में फिल्म उद्योग एक सुविकसित एवं सुस्थापित उद्योग है। विगत सदी के छटवें दशक में रंगीन फिल्मों के निर्माण से भारतीय जनमानस में फिल्मों को देखने की प्रवृत्ति और ज्यादा बढ़ी।

कुछ दशक पूर्व ज्यादातर फिल्में धार्मिक, सामाजिक- सांस्कृतिक और काल्पनिक कथाओं को लेकर बनाई जाती थी। लेकिन अब पर्यावरण और प्रकृति के अनमोल खजाने को लेकर भी फिल्में बनायी जा रही हैं। इन फिल्मों की विषयवस्तु में प्रकृति के अछूतों रहस्यों, वन्य जीवन और वन्य जीवन प्रकृतवास से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी का समावेश होता है। आज पर्यावरण प्रबंधन और संरक्षण से संबंधित फिल्मों के निर्माण की महती आवश्यकता है। विशेष रूप से कृषि विकास, जलग्रहण क्षेत्र विकास, भूमि संरक्षण, वन एवं वन्य जीवन संरक्षण के अलावा पर्या विकास कार्यक्रम पर बनी फिल्में लोगों को सार्थक जानकारी एवं ज्ञान प्रदान कर सकती हैं।

7.5.5 इन्टरनेट

कुछ वर्ष पूर्व इन्टरनेट केवल विकसित देशों और खासकर अमेरिका के प्रमुख शहरों में ही उपलब्ध था। लेकिन ब्रोसर तकनीक (Brower Technology) के अविष्कार और सरलता से उपयोग के अलावा 'वर्ल्ड वाइड वेब' की व्यापारिक वृद्धि ने आज दुनिया के लिए इन्टरनेट के दरवाजे खोल दिए। कोरिया, ताईबान, जापान एवं चीन जैसे देशों में जहां भाषागत कठिनाईयां

थी, इन्टरनेट आम हो गया। यहां तक कि अरब देशों में इन्टरनेट सेवाओं का विस्तार तेजी से हो रहा है। भारत में संचार माध्यमों के द्रुत विकास और अच्छे यंत्रों की उपलब्धता के बावजूद इसके प्रति जागृति कम है। देश में इन्टरनेट की सम्बद्धता (Connectivity) एक प्रमुख बाधा है। दूसरे, इसके शुल्क और इन्टरनेट के उपयोग हेतु सुविधाएं हर जगह उपलब्ध नहीं है। इन्टरनेट हेतु व्यापारिक कनेक्शन सुविधा केवल बड़े शहरों में ही उपलब्ध है।

इन्टरनेट की विभिन्न कारणों से विश्व में मांग बढ़ी रही है। इसके बहुआयामी उपयोग हैं। इसके उपभोक्ताओं में विविधता है क्योंकि यह व्यापार, शिक्षा, धर्म, राजनीति, सामुदायिक जीवन और मनोरंजन से लेकर विज्ञान की विविध उपलब्धियों तक अपने समेटे हैं। अब चाहे इलाज हेतु डाक्टर से परामर्श करना हो या किसी ठेके के लिए टेन्डर भरना हो, इन्टरनेट की सहायता से यह कार्य चुटकियों में होता है। शिक्षा के क्षेत्र में इसके बढ़ते महत्व के कारण स्कूलों में इनके पाठ्यक्रम संचालन हेतु विश्व बैंक तक सहायता प्रदान कर रहा है।

भारत में इन्टरनेट एक वास्तविकता अगस्त, 1976 में बन सका जब विदेश संचार निगम ने इसके लिए द्वार खोले। तब-से इसके उपयोगकर्ताओं की संख्या निरंतर वृद्धि हो रही है। वर्तमान में इन्टरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 50 हजार से ज्यादा होने का अनुमान है। इसके उपभोक्ताओं या ग्राहकों में बड़े सगठन, निगम, शैक्षणिक संस्थान, सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयां, प्रकाशन समूह आदि मुख्य हैं। अब इन्टरनेट पर कला एवं संस्कृति से लेकर व्यापार तक के अवसर उपलब्ध हैं। पर्यावरण प्रबन्धन के क्षेत्र में इन्टरनेट का उपयोग विश्वव्यापी तथ्यात्मक जानकारी प्रदान करने की दृष्टि से उपयोगी है। पर्यावरण के विविध पक्षों में जानकारी एवं आकड़ों को इन्टरनेट पर आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। पर्यावरणीय अनुसंधान, नियोजन और प्रबंधन में इनसे प्राप्त जानकारी विशेष रूप से उपयोगी है।

7.5.6 मल्टीमीडिया

पर्यावरणीय संचार का सबसे नया माध्यम मल्टीमीडिया है। मल्टीमीडिया में लेखन सामग्री (Text) ध्वनि, वीडियो, द्विआयामी या त्रिआयामी ग्राफिक्स और एनीमेशन को एकीकृत कर ऐसा माध्यम बनाया जाता है जो लोगों से प्रत्यक्ष बातचीत कर सकें। इसका एक मात्र उद्देश्य लोगों को एक नियंत्रित ढंग से जानकारी, शिक्षा और मनोरंजन प्राप्त करना है। मल्टीमीडिया से जैव विविधता एवं वन्य जीवन पर ऐसी जानकारी न केवल मनोरंजक होगी बल्कि शिक्षाप्रद भी हो सकती है। पर्यावरण के विविध पक्षों पर मल्टीमीडिया अच्छी जानकारी प्रदान कर सकता है। अब इसका उपयोग विज्ञापन, फिल्मों, इन्टरनेट, मुद्रित माध्यमों, दूरदर्शन, वीडियो गेम्स एवं केबल उद्योग सहित अन्य क्षेत्रों में भी किया जा रहा है। इसके उपयोग से लाभ यह है कि वास्तविक दृश्यों पर यदि फिल्म बनाए तो लागत कई गुना आती है जबकि मल्टीमिडिया से यह कार्य सस्ते में हो जाता है।

7.5.7 परम्परागत माध्यम

परम्परागत लोक माध्यमों से लोक समाज और संस्कृति की आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। लोक माध्यमों की जड़ें ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों में आज भी गहरी पैठी हैं। इन

माध्यमों के प्रमुख घटक हैं- लोकगीत, लोकसंगीत, लोकनृत्य, नौटंकी, कठपुतली, जात्रा, नाचा, माचा एवं गाचा आदि। यद्यपि आज इलेक्ट्रानिक मीडिया के विस्तार से परम्परागत लोक माध्यमों के प्रति लोगों का लगाव कम हो चला है लेकिन इनकी जीवन्तता अभी भी बनी हुई है। यह लोक शिक्षा के अनौपचारिक माध्यम हैं। परम्परागत लोक माध्यमों की अपनी विशेषताएं हैं जिनके कारण ये पर्यावरण संरक्षण और पर्यावरणीय चेतना के प्रसार में कई प्रकार से सहायक हो सकते हैं। इनकी निम्न विशेषताएं हैं।

यह लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। अत: जनसामान्य के मध्य पर्यावरण मित्र जीवनशैली के प्रति जागृति उत्पन्न करने में सहायक हो सकते हैं। ये माध्यम स्थानीय होने से इनकी उपलब्धियां सहज हैं और श्रोताओं से सीधा सम्पर्क कर सकते हैं। अत: इनके द्वारा पर्यावरणीय जानकारी और संदेश प्रभावी ढंग से सम्प्रेषित किया जा सकता है।

इन माध्यमों के प्रेषित सूचनाएं एवं जानकारी, शिक्षा और पर्यावरणीय मूल्यों का सम्प्रेषण अन्य माध्यमों की तुलना में ज्यादा आर्थिक होता है। अत: इन माध्यमों का उपयोग पर्यावरणीय चेतना जागृत करने में नगरों की अपेक्षा गांवों में आसानी से किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त पर्यावरण संचार के विभिन्न उपायों का उपयोग प्रभावकारी हो सकता है- सांस्कृतिक माध्यम, पर्यावरण पर सम्मेलन (गोसिया) पर्यावरण से संबंधित राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय दिवस, पर्यावरण प्रदर्शनी, मानव श्रृंखला, सर्वेक्षण एवं जनसंपर्क, पर्या-प्रतियोगिताओं का आयोजन, पर्या-दलों का गठन, प्रभातफेरी एवं जुलूस, जन आंदोलन, प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा कार्य योजनाएं।

7.6 पर्यावरणीय संचार के क्षेत्र

पर्यावरणीय संचार का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हैं। वस्तुत: पर्यावरण स्वयं एक व्यापक एवं जटिल अवधारणा है जिससे इसका अध्ययन अन्तर्दलीय और बहू विषयीय (Inter-Disciplinary & Multi-Disciplinary) हो जाता है। अध्ययन की सुविधा हेतु पर्यावरणीय संचार के कुछ प्रमुख क्षेत्रों का उल्लेख यहां किया जा रहा है।

7.6.1 पर्यावरणीय संरक्षण

मानव आवश्यकताएं सभ्यता के विकास के साथ सदैव बदलती रही हैं। कभी मनुष्य प्रकृति एक अंग के रूप में अन्य प्राणियों की तरह जीवन निर्वाह करता है किन्तु अब वह प्राकृतिक पर्यावरण से दूर मानव निर्मित पर्यावरण में रहने का अभ्यस्त हो गया है। मनुष्य द्वारा निर्मित पर्यावरण ने अनेक समस्याओं और प्रदूषण के खतरों को जन्म दिया है। अत: वर्तमान परिस्थिति में मनुष्य को ऐसे जीवन दर्शन और जीवन शैली की आवश्यकता है जो पर्यावरण मित्र हो। इस दृष्टि से पर्यावरण संरक्षण वर्तमान समय की एक चुनौती और आवश्यकता दोनों हैं। पर्यावरण संरक्षण का आशय संसाधनों के सम्यक उपयोग के साथ उनकी गुणवत्ता, मूल्य और विविधता और सातत्य (Continuity) बनाए रखना है। पर्यावरण संरक्षण हेतु किए जा रहे उपयोगों को दो श्रेणियों में रखा जाता है- अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास और राष्ट्रीय प्रयास।

(क) **अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास -** अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण हेतु संयुक्त राष्ट्र और उसके विविध अधिकरणों के अलावा अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को पर्यावरण के क्षेत्र में योगदान हेतु विश्व समुदाय द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में जो अन्तर्राष्ट्रीय समझौते और सम्मेलन किए गए हैं वे अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं और उनका सभी देशों द्वारा पालन बाध्यता मूलक हैं।

1. अन्तराष्ट्रीय व्हेल सम्मेलन, 1946
2. समुद्री प्रदूषण निरोधक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, 1954
3. द अन्टार्कटिका संधि, 1959
4. अंतराष्ट्रीय महत्व की नमभूमि सम्मेलन, 1 9? 1
5. मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन 1972
6. जहाजों और वायुयानों से कचड़ा निस्तारण समुद्री प्रदूषण निरोध सम्मेलन, 1972
7. विश्व संस्कृति एवं प्राकृतिक विरासत संरक्षण सम्मेलन, 1972
8. जहाजों से समुद्री प्रदूषण निरोधक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, 1973
9. वन्य पेड़-पौधों की विलुप्त होती प्रजातियों पर अंतराष्ट्रीय व्यापार सम्मेलन, 1973
10. नार्डिक पर्यावरण संरक्षण सम्मेलन, 1974
11. यूरोपीय वन्य जीवन एवं प्राकृतवास संरक्षण सम्मेलन, 1979
12. वन्य जन्तुओं की स्थानान्तरशील प्रजातियों का संरक्षण सम्मेलन, 1990
13. नैरोबी घोषणा, 1982
14. ओजोन पर्त संरक्षण सम्मेलन, वियाना घोषणा, 1979
15. प्रकृति और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण हेतु एशियाई संधि, 1985
16. मांन्ट्रियल ओजोन परत क्षय घोषणा, 1987
17. जलवायु परिवर्तन पर नार्डविक घोषणा, 1989
18. वैश्विक जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त प्रशासनिक परिषद का निर्णय, 1989
19. हरित भवन प्रभाव और समुदाय पर यूरोपीय परिषद का प्रभाव, 1989
20. ओजोन पर्त संरक्षण पर हेलेसिंकी घोषणा, 1989
21. संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास सम्मेलन, 1989
22. जैव विविधता पर नागरिक सम्मेलन, 1992
23. जैवशास्त्रीय विविधता सम्मेलन, 1992
24. पृथ्वी शिखर सम्मेलन, 1992

उपरोक्त सम्मेलनों के अलावा संयुक्त राष्ट्र के विविध अभिकरणों द्वारा जो अन्य कार्यक्रम लिए गए उनमें मरूभूमिकरण नियंत्रण कार्य योजना, ट्रापिकल फारेस्ट एक्शन प्रोग्राम,

मानव और जैवमंडल कार्यक्रम, पर्यावरण शिक्षा एवं जागरुकता, विश्व सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक विरासत संरक्षण, ओजोन संरक्षण, समुद्री प्रदूषण नियंत्रण आदि मुख्य हैं।

(ख) **राष्ट्रीय प्रयास -** राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरणीय संरक्षण के उपाय स्टाक होम सम्मेलन 1972 के बाद गति पकड़ सके। सन् 1980 में गठित तिवारी समिति की अनुशंसा से 1965 में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की स्थापना संभव हो सकी। पर्यावरणीय संरक्षण के संदर्भ में जो प्रमुख उपाय किए गए है उनमें संवैधानिक एवं वैधानिक उपाय प्रमुख हैं। केन्द्र सरकार द्वारा जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के अधीन सितम्बर, 1974 में सर्वप्रथम केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की स्थापना की गई। तत्पश्चात; 23 मार्च, 1974 से यह अधिनियम प्रभावी हुआ। इसी तरह जल प्रदूषण (निवारण एवं नियंत्रण) उपकर अधिनियम, 1977 वायु (प्रदूषण निर्वाण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1961, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 लोक दायित्व बीमा अधिनियम, 1991 तथा हैजार्डस वेस्ट मेनेजमेंट कानून 1989 आदि वैधानिक उपायों से पर्यावरण संरक्षण में सहायता मिली। इसके अलावा राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड की स्थापना से सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों को बल मिला। सन् 1988 में गोबिन्द बल्लभ पंत हिमालय पर्यावरण संस्थान की स्थापना से पर्यावरणीय अनुसंधान कार्यो को बल मिला। गैर परम्परागत ऊर्जा विकास कार्यक्रम, पर्याविकास कार्यक्रम, वन एवं वन्य जीवन संरक्षण और सामाजिक वानिकी की दिशा में अनेक कार्यक्रम संचालित किए गए।

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय को पर्यावरण संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त हुआ। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों जैसे संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) विश्व प्रकृति निधि (WWE) विश्व संरक्षण संघ (WCU), विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) आदि के अलावा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से पर्यावरण संरक्षण संबंधी परियोजनाओं के लिए सहायता प्राप्त हुई। भारत ने अन्तराष्ट्रीय व्लेहल नियमन, अंटार्कटिका संधि, अन्तर्राष्ट्रीय पादप संरक्षण समझौता, जल मर्गावी प्राकृतवास संरक्षण समझौता, वन्य प्राणियों एवं वनस्पतियों की लुप्तप्राय प्रजातियों के अन्तराष्ट्रीय व्यापार समझौता, बेसल समझौता, जैव विविधता संरक्षण समझौता, मांट्रियाल घोषणा, जलवायु परिवर्तन संबंधी संरचना समझौता एवं मरूभूमिकरण नियंत्रण समझौता आदि संधियों और समझौतों पर हस्ताक्षर किए हैं। इस तरह भारत पर्यावरण संरक्षण की दिशा में गंभीरता से संलग्न है। पर्यावरणीय जागरूकता और शिक्षा की दृष्टि से प्रत्येक स्तर पर इनके उन्नयन हेतु ध्यान दिया जा रहा है।

7.6.2 पर्यावरणीय जागरुकता

पर्यावरण संरक्षण और विकास की दृष्टि से पर्यावरण जागरुकता बहुत आवश्यक है। सरकार द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु जो वैधानिक उपाय किये गए उनका जनता को लाभ तब तक नहीं है जब तक कि लोग इनके बारे में जागरुक नहीं होते। पर्यावरणीय समस्याओं और क्षय के लिये भारत में जनसंख्या विस्फोट काफी हद तक उत्तरदायी हैं। अत: इस समग्र परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय जागरुकता के प्रयास इस ढंग से किए जाने चाहिए कि जन सामान्य

पर्यावरण संरक्षण की दिशा में निर्णायक भूमिका आदा कर सके। पर्यावरणीय जागरुकता के लिये जिन गतिविधियों को प्राथमिकता दी जाए उनमें निम्न का समावेश किया जा सकता है।

1. पर्यावरण समस्याओं और मुद्दों पर फोल्डर, नारे, हस्तपत्र, दीवार लेखन, बेनर होर्डिंग्स आदि तैयार कर वितरित किए जाए।
2. जनसंचार माध्यमों से पर्यावरणीय विषयों पर सामग्री प्रसारित की जाए। पर्यावरण के विभिन्न पक्षों पर वीडियो कैसेट, आडियो केसेट, स्लाइड प्रदर्शन, रेडियो एवं दूरदर्शन से प्रसारण की व्यापक व्यवस्था की जाए।
3. सांस्कृतिक माध्यमों का ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार अधिक है। अत: पर्यावरणीय संदेश को लोकगीत, नृत्य, जात्रायों, कला जत्था एवं अन्य सांस्कृतिक माध्यमों के द्वारा प्रसारित किया जाए।
4. सामुदायिक स्वच्छता, प्रदूषण नियंत्रण, स्वास्थ्य एवं उन्नत जीवन से संबंधित विषयों पर सम्मेलन एवं संगोष्ठियों का आयोजन किया जाना चाहिए।
5. पर्यावरण से संबंधित विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दिवसों का आयोजन पर्यावरणीय चेतना जागृत करने का एक अच्छा माध्यम है। 5 जून विश्व पर्यावरण दिवस, 22 अप्रैल विश्व वसुंधरा दिवस, 22 मार्च विश्व जल. दिवस, 16 सितम्बर ओजोन संरक्षण दिवस, 29 दिसम्बर जैव विविधता संरक्षण दिवस, 7 अप्रैल विश्व स्वास्थ्य दिवस, 11 जुलाई विश्व जनसंख्या दिवस आदि का आयोजन राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तर पर किया जाए।
6. पर्यावरण प्रबंधन के विविध पक्षों पर शिक्षा संस्थाओं में निबंध, प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद एवं चित्रकला, प्रतियोगिताओं का आयोजन कर विद्यार्थियों में पर्यावरणीय चेतना जागृत की जा सकती है। इसी तरह पर्या-शिविर (Eco-Camps) और पर्या-पर्यटन (Eco-Tourism) के कार्यक्रम भी बच्चों के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

उपर्युक्त कार्यक्रम के अलावा विशेष अवसरों पर पर्यावरणीय मुद्दों को लेकर मानव श्रृंखलाएं, सर्वेक्षण और जनसंपर्क, जुलूस और प्रभात-फेरियां भी आयोजित की जा सकती है। विशेष समारोह और मेलों आदि में पर्यावरणीय चेतना हेतु विशेष कार्यक्रम आयोजित किए जाना चाहिए। इन कार्यक्रमों का संचार माध्यमों द्वारा व्यापक प्रसार भी किया जाना चाहिए।

7.6.3 पर्यावरणीय शिक्षा

पर्यावरणीय संचार का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र पर्यावरणीय शिक्षा है। पर्यावरणीय शिक्षा लगभग सभी परम्परागत समाजों में किसी न किसी रूप में प्रचलित रही है किन्तु अब बदलते सामाजिक- आर्थिक और प्रौद्योगिकी परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण शिक्षा के सुव्यवस्थित स्वरूप की आवश्यकता है। पर्यावरण शिक्षा का आशय विश्व संरक्षण संघ द्वारा निम्नवत प्रतिपादित किया है। 'पर्यावरणीय शिक्षा उन कौशलों तथा दृष्टिकोणों के विकास करने के उद्देश्य से उन मूल्यों को मान्यता देने तथा अवधारणाओं को स्पष्ट करने की प्रक्रिया है जो मनुष्य, उसकी संस्कृति और उसके जैव- भौतिक परिवेशों के मध्य अंत:संबधों को समझने एवं जानने हेतु आवश्यक है।

पर्यावरण शिक्षा में पर्यावरण की गुणवत्ता से जुड़े मुद्दों के बारे में निर्णय लेने तथा आचार संहिता के स्वनिर्धारण का भी समावेश है। पर्यावरण की गुणवत्ता से जुडे मुद्दों के बारे में निर्णय लेने तथा आचार संहिता के स्वनिर्धारण का भी समावेश हैं। पर्यावरणीय शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य लोगों में पर्यावरणीय जागरुकता, ज्ञान, अभिवृत्ति, कौशल पर्यावरणीय योग्यता और सहभागिता को विकसित करना है। इस उद्देश्य से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरणीय शिक्षा के उन्नयन हेतु प्रयास किए गए। इनमें स्टाकहोम सम्मेलन (1972), पर्यावरण शिक्षा पर अंतर्राष्ट्रीय कार्यशाला, बेलग्रेड (1975), तिब्लिसी सम्मेलन (1977), आदि मुख्य है।

भारत में पर्यावरणीय शिक्षा विभिन्न विषयों के अन्तर्गत एक लम्बे समय से प्रचलित रही है। लेकिन एक विषय के रूप में इसका विकास 1980 के दशक में संभव हुआ। पर्यावरणीय शिक्षा पर अनेक कार्यशालाएं, संगोष्ठियां और सम्मेलन आदि आयोजित हुए जिससे देश में इसके विकास को बल मिला। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में विशेष रूप से पर्यावरणीय शिक्षा पर जोर दिया गया। फलत: प्राथमिक स्तर से उच्च शिक्षा तक में पर्यावरणीय शिक्षा का समावेश किया गया है। भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में पर्यावरणीय शिक्षा का जो संस्थागत रूप उभर रहा है उसमें विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों, कृषि विश्वविद्यालयों, अभियांत्रिकी महाद्यिलयों, नियोजन और प्रबंधन के शिक्षा संस्थानों की महत्वपूर्ण भूमिका है। उच्च शिक्षा की तीनों आयामों- शिक्षण, शोध, और विस्तार में पर्यावरण शिक्षा का समावेश किया गया है।

7.6.4 जनसंख्या जनसंचार

पर्यावरण का जनसंख्या वृद्धि से घनिष्ठ संबंध हैं। पर्यावरण क्षय और प्रदूषण के कारणों में जनसंख्या वृद्धि एक प्रमुख कारण है। विशेष रूप से विकासशील और निर्धन क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि एक अभिशाप है। अत: जनसंख्या संचार द्वारा जनसामान्य के मध्य जनसंख्या के बारे में जागरुकता, विवेक व समझ का विकास आवश्यक है। इसी के साथ लोगों को स्वास्थ्य पारिवारिक जीवन, प्रजनन स्वास्थ्य और सामाजिक जीवन के उन्नत स्तर का ज्ञान भी दिया जा सकता है। एक प्रकार से जनसंख्या संचार के द्वारा समाज में जनसंख्या के प्रति इच्छित दृष्टिकोण का विकास एवं परिवर्तन लाया जा सकता है। जनसंख्या संचार एक प्रकार से शैक्षिक कार्यक्रम है जिसका प्रारम्भिक उद्देश्य अनियंत्रित जनवृद्धि को रोकने में लोगों में विवेकपूर्ण दृष्टिकोण का विकास करना है। जनसंख्या संचार के द्वारा व्यक्ति को परिवार, राष्ट्र, समाज तथा समग्र विश्व की जनसंख्या की स्थिति स्पष्ट करते हुए इस संदर्भ में स्वयं और देश के प्रति अपने कर्तव्यों की उचित समझ प्रदान की जा सकती है।

जनसंख्या संचार के माध्यम से लोगों तक लघु परिवार के आदर्श को सम्प्रेषित किया जा सकता है। इसी तरह विवाह की सही आयु, दो बच्चों के जन्म के बीच पर्याप्त अन्तर, बच्चों की उचित देखभाल, स्वास्थ्य सफाई एवं पोषाहार, प्रसूति सेवाओं का ज्ञान आदि के अलावा जनसंख्या वृद्धि के पर्यावरण पर दुष्परिणामों आदि के संदेश को सम्प्रेषित किया जा सकता है। जनसंख्या वृद्धि के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन पर पड़ने वाले

प्रभावों के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों की कमी और प्रदूषण की समस्याओं को रोकने के लिए स्वास्थ्य जनमत का निर्माण भी जनसंचार द्वारा संभव है।

7.6.5 स्वास्थ्य जनसंचार

पर्यावरणीय संचार का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र स्वास्थ्य संचार है क्योंकि स्वास्थ्य और पर्यावरण का घनिष्ठ संबंध है। स्वास्थ्य मानव अधिकारों में से एक है जिसे संयुक्त राष्ट्र और विश्व स्वास्थ्य संगठन ने मान्यता प्रदान की है। विश्व स्वास्थय संगठन के अनुसार- 'स्वास्थ्य पूर्ण शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक खुशहाली की एक स्थिति है और रोग या कमजोरी का अभाव मात्र नहीं है। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में लिया है। स्वास्थ्य संचार इस व्यापक परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करने में सहायक है। वस्तुत: स्वास्थ्य संचार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से स्वास्थ्य संबंधी मूल तथ्यों और रोगों से बचाव संबंधी उपायों की जानकारी तथा ज्ञान सम्प्रेषित किया जाता है। इसके साथ-साथ उपलब्ध स्वास्थ्य सुविधाओं के उपयोग के बारे में जन सामान्य में जागरुकता उत्पन्न करना स्वास्थ्य संचार का एक प्रमुख आयाम है। स्वास्थ्य संचार के माध्यम से लोगों में स्वास्थ्य और रोगों के प्रति सम्यक दृष्टिकोण का विकास किया जा सकता है। आज बड़ी संख्या में लोगों की जनसंचार माध्यमों तक पहुँच है। अत: इन माध्यमों का उपयोग स्वास्थ्य शिक्षा और जागरुकता के क्षेत्र में सकारात्मक परिणाम ला सकता है। देश की स्वास्थ्य नीतियों एवं कार्यक्रमों के अनुरूप जनभागीदारी को बढ़ाना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि इस क्षेत्र में संलग्न कार्यकर्ताओं को उत्प्रेरित करना।

7.6.6 विकासात्मक जनसंचार

विकास की अवधारणा में सतत् परिवर्तन होता रहा है। औद्योगिक क्रांति के दौरान विकास का आशय आर्थिक उत्पादन में वृद्धि और प्रगति के संदर्भ में लिया गया किन्तु अब यह मानव जीवन के सभी पक्षों से संबंधित है। विकास की अवधारणा को मनुष्य के सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक और यहां तक कि नैतिक जीवन के विकास से जोड़ा गया है। पर्यावरण के संदर्भ में अब सतत् विकास की अवधारणा को महत्व दिया जा रहा है। विकास के बिना मानव की सामाजिक- आर्थिक समस्याओं का निराकरण संभव नहीं है। विकासशील देशों के समक्ष विकास की जो समस्याएं हैं उनमें जनसंख्या वृद्धि, निर्धनता, कुपोषण, बेरोजगारी एवं पर्यावरणीय क्षय एवं प्रदूषण की समस्याएं मुख्य हैं। आज विश्व में लगभग 130 करोड़ लोगों को सुरक्षित पेयजल उपलब्ध नहीं है तो 170 करोड़ लोगों को स्वच्छ वातावरण प्राप्त नहीं है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार प्रतिदिन 25 हजार व्यक्तियों की मृत्यु प्रदूषण के कारण होती है जिसके लिए निर्धनता उत्तरदायी है। अत: विकास संचार के माध्यम से न केवल निर्धनता को दूर किया जा सकता बल्कि पर्यावरण प्रदूषण और क्षय को भी रोका जा सकता है। विकास के द्वारा लोगों के जीवन की गुणवत्ता और रहन-सहन के स्तर को उन्नत बनाया जा सकता है।

सतत् विकास हेतु उन्नत प्रौद्योगिकी का विकास और उसकी उपलब्धता वर्तमान समय की मांग है। मानव जीवन में प्रौद्योगिकी का अत्यधिक महत्व है। इस संदर्भ में श्रीमती इन्दिरा

गांधी का कथन था "प्रौद्योगिकी का उद्देश्य लोगों को वह साज-सामान और औजार उपलब्ध कराना है जो उनके लिए जरूरी हैं। प्रौद्योगिक के बिना कोई भी संसाधन, चाहे वह प्राकृतिक हो या मानवनिर्मित इस्तेमाल नहीं हो सकता है। विकासशील देश अपनी विकासजन्म आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विकसित देशों से उन्नत प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण की मांग करते रहे हैं किन्तु विकसित देश इस मुद्दे को सदैव नकारते रहे हैं। "वर्तमान में पर्यावरणीय समस्याओं की जटिलता और गंभीरता को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र द्वारा विकास और पर्यावरण पर अनेक सम्मेलन आयोजित किए गए। इन सम्मेलनों को निष्कर्ष सतत् विकास (Sustainable Development) की अवधारणा के रूप में सामने आया। सतत् विकास का आशय ऐसा विकास जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करता हुआ भावी पीढ़ियों के लिए संसाधनों के संरक्षण पर बल देता है। अत: जनसंचार माध्यमों के सतत् विकास की अवधारणा को लोगों तक सम्प्रेषित किया जाना चाहिए।

7.6.7 पर्यावरणीय कानून

सरकार द्वारा अब तक पर्यावरणीय से संबंधित अनेक कानूनों का निर्माण किया गया किन्तु इनके बारे में जनसामान्य को बहुत कम ज्ञान है। अत : जनसंचार माध्यमों के द्वारा सरल ढंग से इन कानूनों का प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए। प्रमुख रूप से वन जीवन संरक्षण अधिनियम, 1972, जल प्रदूषण निवारण अधिनियम 1974, जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण उपकर अधिनियम, 1977, वायु प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 1981 तथा पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 सहित अन्य पर्यावरणीय कानूनों की जानकारी जनसामान्य को सम्प्रेषित की जाना चाहिए।

7.7 पर्यावरणीय रिपोर्टिंग

पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के बारे में सार्वजनिक चेतना विगत दो- तीन दशकों में उचित हुई है। वस्तुतः पर्यावरण व आवास की समस्याएं तथा ऊर्जा व अन्य संसाधनों के चुकने के खतरे बढ़ती जनसंख्या के प्रतिफल है। इस सदी के उत्तरार्द्ध में विशेष रूप से पर्यावरणीय समस्याओं एवं मुद्दों को अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से उठाया जा रहा है। पोषण वस्त्र एवं आवास की जरूरतों को पूरा करने की प्रक्रिया में मनुष्य ने प्राकृतिक पर्यावरण को हमेशा कुछ हद तक बदला है। प्राकृतिक आपदाओं जैसे ज्वालामुखी विस्फोट, जलावृष्टि, भूकम्प एवं भूस्थलन आदि की अपेक्षा मनुष्य ने प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों को ज्यादा नष्ट- भ्रष्ट किया है। यही कारण है कि पर्यावरणवाद (Environmentalism) एक राजनीतिक एवं सार्वजनिक मुद्दे के रूप में प्रौद्योगिकीय युग की देन है। यद्यपि इसके पूर्व पर्यावरण प्रदूषण की समस्या हर युग में रही है लेकिन सीमित दायरे में,। वस्तुतः औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने भौतिक प्रगति के साथ पर्यावरणीय प्रदूषण को जटिल एवं व्यापक बनाया है। इसी के साथ जल, जंगल एवं जमीन के विनाश की समस्याएं मुखर हुई। फलतः साठ के दशक में सरकारी पर्यावरणीय नीति के खिलाफ आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ।

इस परिप्रेक्ष्य में विश्वव्यापी चेतना जागृत हुई और स्वाभाविक है कि इसमें प्रेस की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई। यद्यपि पर्यावरणीय रिपोटिंग एक जटिल कार्य है फिर भी पत्रकार, लेखक एवं संवाददाता अपने अध्ययन, अनुभव एवं कौशल के आधार पर पर्यावरणीय समस्याओं, मुद्दों एवं घटनाओं का विश्लेषण कर सम्यक् जानकारी सम्प्रेषित कर सकते हैं। प्राय: पर्यावरणीय नीतियाँ उच्चस्तर पर बनायी जाती हैं और उनका क्रियान्वयन स्थानीय स्तर पर किया जाता है। इससे उत्पन्न अन्तर्विरोधों को उजागर करने. में प्रेस की भूमिका बडी महत्वपूर्ण होती है। इसी तरह पर्यावरणीय नीतियों के क्रियान्वयन में समाज के किसी वर्ग या कुछ लोगों के हितों पर चोट पहुँचती है तो वे इनके खिलाफ आवाज उठाते हैं। इन परिस्थितियों में संवाददाताओं एवं प्रेस से जुड़े लोगों के लिये राष्ट्रीय पर्यावरणीय नीतियों तथा कानूनों की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए।

पर्यावरण का ज्ञान मनुष्य को केवल बाहर से देखने और अनुभव करने से ही प्राप्त नहीं होता। सार्वजनिक मामलों में विशेषकर पर्यावरणीय मुद्दों, घटनाओं, समस्याओं और कार्यवाहियों की जानकारी संचार माध्यमों पर निर्भर करती है कि वे उसे किस ढंग से प्रस्तुत करते हैं। पर्यावरणीय रिपोर्टिंग का उद्देश्य पर्यावरण सम्बन्धी किसी कार्यवाही के परिणामों पर्यावरण सम्बन्धी सावधानीपूर्वक किए गए अध्ययनों, कुछ विशेष पर्यावरणीय मुद्दों एवं समस्याओं को उद्घाटित करना है। जिससे कि आम आदमी इन तथ्यों के बारे में जागृत हो सके। पर्यावरणीय खतरों के प्रति जनजागृति के अलावा पर्यावरण सम्बन्धी संवेदनशील मुद्दों पर जनता एवं सरकार के बीच बहस तभी संभव है जब जनता को इस सन्दर्भ में बेहतर ढंग से सूचित हों। अत: जिस तरह पर्यावरण की अवधारणा व्यापक है उसी प्रकार पर्यावरणीय रिपोर्टिंग का क्षेत्र भी व्यापक है। पर्यावरणीय रिपोर्टिग के अन्तर्गत निम्न तथ्यों का समावेश कर सकते हैं -

1. किसी प्रस्तावित कार्यवाही (Action) के पर्यावरणीय प्रभावों के आकलन सम्बन्धी सूचना तथा तकनीकी आकड़ों सहित जानकारी को प्रेषित करना।
2. किसी घटना या गतिविधि के पर्यावरण पर संभावित परिणामों की चर्चा तथा पारिस्थितिक तंत्रों पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परिणामों की जानकारी प्रस्तुत करना।
3. सामाजिक- आर्थिक, तकनीकी एवं विभिन्न विकास कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं के प्रतिकूल पर्यावरणीय परिणामों की चर्चा करना जिन्हें नकारा ही नहीं जा सकता है।
4. किसी प्रस्तावित कार्यवाही के विकल्पों (Alternatives) की लागत तथा पर्यावरणीय प्रभावों का विश्लेषण जिससे कुछ या सभी खराब पर्यावरणीय प्रभावों को नकारा जा सके।
5. मानवीय गतिविधियों के पर्यावरण पर अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक संचयी परिणामों की जानकारी प्रदान करना जिससे पर्यावरण के उपयोग एवं उत्पादकता के बीच के सन्तुलन को प्रस्तुत किया जा सके।
6. पर्यावरणीय मुद्दों पर सरकारी अभिकरणों, निर्णयकर्ताओ, गैर सरकारी संगठनों तथा व्यक्तियों द्वारा व्यक्त की गई राय, विरोधों और सुझावों को आम जनता तक पहुँचाना॥

7. पर्यावरणीय संरक्षण एवं प्रबन्धन के क्षेत्र में जन सामान्य की भागीदारी प्राप्त करने के उद्देश्य से चेतना जागृत करना।
8. पर्यावरणीय जन शिक्षा के उद्देश्य से विभिन्न संचार माध्यमों का उपयोग करना।
9. पर्यावरण पर स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संगोष्ठियों, सभाओं तथा कार्यक्रमों सहित कार्यवाहियों को सम्प्रेषित करना पर्यावरणीय रिपोर्टिंग का एक महत्वपूर्ण भाग है।

पर्यावरणीय रिपोर्टिंग के माध्यम से पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर निर्णय प्रक्रिया में जन भागीदारी के अवसर बढाए जा सकते हैं जो मानव पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। पर्यावरणीय समस्याओं के बारे में जाँच-पड़ताल या जनता की सुनवाई की दृष्टि से भी कुछ जानकारी महत्वपूर्ण होती है तथा इस तरह के विषयों पर व्यापक चर्चा जनहित में होती हैं, इसलिए विभिन्न संचार माध्यमों से इन्हें प्रकाश में लाना चाहिए। पर्यावरणीय समस्याओं पर व्यापक विचार विमर्श के बाद सरकार जिन नियमों तथा कानूनों को पारित करती है उनके बारे में जानकारी प्रदान करना जनसंचार माध्यमों का कार्य है। इसी तरह पर्यावरण, पर इनके सकारात्मक तथा नकारात्मक परिणाम भी है जिन्हें सम्पादकीय, विशेष स्तम्भों (columns), टिप्पणियों, समसामयिक घटनाओं तथा सम्पादक के नाम पत्रों के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। (संचार, शिक्षा ओर प्रबंधन)

वर्तमान समय में पर्यावरण संबंधी मुद्दे व्यापक परिप्रेक्ष्य समेटे हुए हैं। पर्यावरण संरक्षण और प्रबंधन में जनभागी बहुत आवश्यक है। जो तभी संभव है जब लोगों को पर्यावरणीय समस्याओं और मुद्दों की जानकारी प्राप्त हो। अत: पर्यावरण रिपोर्टिंग के माध्यम से जनउपयोगी जानकारी एवं तथ्य लोगों के समक्ष लाए जाना चाहिए। सतत विकास, जनसंख्या निर्धनता और प्रौद्योगिकी के पर्यावरण के संदर्भ में बहुआयामी संबंध हैं जिनके पर्यावरण पर सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों प्रकार के प्रभाव देखे जा सकते हैं। इन प्रभावों का सही ढंग से विश्लेषण कर उन्हें जनता के समक्ष प्रस्तुत किए जाए।

मुद्रित माध्यमों की जनचेतना जागृत करने में आज भी महत्वपूर्ण भूमिका है। पुस्तकों, समाचारपत्र-पत्रिकाओं, बुलेटिन, फोल्डर, चित्र आदि का स्थान दूरदर्शन या रेडियो नहीं ले सकते हैं। समाचारपत्र-पत्रिकाओं में पर्यावरणीय मुद्दों पर संपादकीय, विशेष स्तम्भ, टिप्पणियां, समसामयिक लेख तथा संपादक के नाम पत्र आदि के माध्यम से पर्यावरणीय मुद्दों की जानकारी जन-सामान्य तक सम्प्रेषित की जा सकती हैं। इसी तरह पर्यावरण के विविध पक्षों और आयामों पर सरकारी अधिकारियों, शैक्षिक संगठनों, व्यक्तियों और विशेषज्ञों द्वारा व्यक्त मत, विरोध और सुझाव को पर्याप्त स्थान दिया जाना चाहिए। इसके पर्यावरणीय समस्याओं और कार्यक्रमों के प्रति स्वास्थ्य जनमत तैयार करने में सहायता मिलती हैं।

वर्तमान में औद्योगिक विकास ने मनुष्य की समग्र जीवन शैली को तेजी से प्रभावित किया है। फलत: मनुष्य उपभोगवादी सभ्यता का शिकार हुआ और उसने पर्यावरणीय क्षय, प्रदूषण एवं प्राकृतिक संसाधनों के चुकने के खतरों को न्यौत लिया है। इस परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय मुद्दों को संचार माध्यम कैसे प्रस्तुत करते हैं, उसका जनमत पर गहरा प्रभाव पड़ता

है। इसके अलावा पर्यावरणीय रिपोर्टिंग के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय कार्यवाहियों का सम्यक विश्लेषण कर जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। पर्यावरणीय तथ्यों को ईमानदारी से रखा जाए जिससे लोग भ्रमित न हों। आज राष्ट्रीय संदर्भ में ऐसे अनेक आन्दोलन चलाए गए जिनका प्रत्यक्ष संबंध पर्यावरणीय समस्याओं से है। इन आन्दोलनों की सफलता का एक मुख्य कारण जनसंचार माध्यमों का सहयोग था। उत्तरांचल में चिपको आन्दोलन, मध्यप्रदेश में नर्मदा बचाओ आन्दोलन, केरल में शांति घाटी आन्दोलन और समय-समय पर वनवासियों द्वारा वन बचाओ आन्दोलनों को व्यापक जन समर्थन तब तक नहीं मिलता जब तक उनकी जानकारी सही ढंग से लोगों तक नहीं पहुँचती। अत: पर्यावरणीय घटनाओं को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए। जनसंचार माध्यमों की भूमिका सजग प्रहरी की होती है जो पर्यावरणीय संरक्षण और राष्ट्रीय हितों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हैं। वस्तुत: आज पर्यावरणीय रिपोर्टिंग का दायरा जनसंचार की उन्नत प्रौद्योगिकी के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक विस्तृत हो गया है। अत: पर्यावरणीय सम्मेलनों, सभाओं, संगोष्ठियों तथा कार्यवाहियों के बारे में सूचना तथा जानकारी पर्यावरणीय रिपोर्टिंग का महत्वपूर्ण अंग बन गए हैं।

जगदीश्वर चतुर्वेदी का मत है कि 'पर्यावरण संबंधी लेखन को पत्रकारिता के इतिहास का अंग होना चाहिए। पत्रकारिता के इतिहास का अर्थ राजनीति मात्र नहीं होना चाहिए। विकास मूलक प्रश्नों को पत्रकारिता के इतिहास का केन्द्रीय तत्व बनाया जाना चाहिए। इसके लिए हमें समाचार की नई अवधारणा की खोज करनी होगी। पर्यावरण का प्रश्न प्रकृति का प्रश्न है, परिवेश का प्रश्न है, स्वास्थ्य का प्रश्न है, साथ' ही आम जिंदगी का अनिवार्य प्रश्न है। पर्यावरण संबंधी प्रश्न की रिपोर्टिंग कैसे की जाए इसके प्रति सुसंगत समझ बेहद जरूरी है, (पर्यावरण और प्रेस-हिन्दू पत्रकारिता के इतिहास की भूमिका)

7.8 सारांश

आज का युग संचार का युग है। अत: पर्यावरण के प्रति चेतना जाग्रत करने में जनसंचार माध्यमों की भूमिका बहुआयामी है। वर्तमान उपभोगवादी समाज में व्यक्ति जिस परिवेश में रहता है उसमें उसकी भूमिका एक उपभोक्ता जैसी है। वह विभिन्न वस्तुओं और प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग में तो प्रवृत है लेकिन इनके सवंर्धन एवं पुन: चक्रिकरण के प्रति उदासीन है। यही कारण है कि न केवल नगरों एवं कस्बों में पर्यावरण का क्षय हुआ है बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी बाजार अर्थ व्यवस्था के प्रभाव परिलक्षित हो चले हैं। बाजार अर्थ व्यवस्था उन्मुख कृषि एवं वानिकी ने प्राकृतिक स्रोतों के दुरुपयोग एवं प्रदूषण की संभावनाओं को बड़ा दिया है इसे परिप्रेक्ष्य से पर्यावरणीय जागरूकता का महत्व पहले से आज कहीं ज्यादा बढ़ गया है।

सभी प्रकार के विकास कार्यो में जनभागीदारी को विकास रणनीति का एक प्रमुख कारक माना गया है इसी दृष्टि के पर्यावरण प्रबन्धन एवं संरक्षण की सफलता काफी हद तक जनता के सहयोग पर निर्भर करती है पर्यावरण क्षय की समस्या का सीधा सम्बन्ध मनुष्य की जीवन शैली से जुड़ा हुआ है ग्रामीण एवं नगरी निर्धनता पर्यावरण विनाश के लिये उत्तरदायी ठहराई जा रही है जो अभिजात्य वर्ग द्वारा अपनाई गई पाश्चात्य जीवन शैली भी पर्यावरण क्षय के

लिये कम उत्तरदायी नहीं है इसलिए पर्यावरणीय समस्याओं के संदर्भ में जीवन की गुणवत्ता में सुधार के प्रति जाग्रत करना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि उपभोगवादी सभ्यता के दुष्परिणामों के प्रति स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरणीय मुद्दों की और जनसामान्य के रुझान और भागीदारी तब तक सुनिश्चित रूप से फलदायी नहीं होगी तब तक कि उन्हें पर्यावरणीय ज्ञान एवं चेतना से संस्कारित नहीं किया जाता है

लोक शिक्षा में जनसंचार माध्यमों की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण हैं इसलिए पर्यावरणीय जानकारी एवं ज्ञान इन माध्यमों से अधिकाधिक लोगों तक पहुंचा सकता है और उनके दृष्टिकोण एवं व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन की आशा की जा सकती है समाचारपत्र, पत्र-पत्रिकाओं रेडियो एवं दूरदर्शन आदि के अलावा जनसंचार के ऐसे अनेक माध्यम हैं जो पर्यावरण चेतना जाग्रत करने में उपयोगी सिद्ध हो सकते है

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पर्यावरण : संचार शिक्षा और प्रबन्धन, (2000) एच.सी.जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर
- इन्टरनेशनल इनवायरमेन्टल लाज, (1996) पी. आर. त्रिवेदी, आई.बी.एच. पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
- रिपोर्टिंग ऑफ विजनेश एण्ड द इकानामी, (1981) लुइस एम. कोहमीर प्रेन्टिसहाल इन्टरनेशनल, लंदन
- पर्यावरणीय अध्ययन (1995), साविन्द्र सिंह, प्रयाग प्रकाशन, इलाहाबाद
- जनसंचार और हिन्दी पत्रकारिता : अर्जुन तिवारी, जय भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद
- प्रेस कानून : नन्द किशोर त्रिखा

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. पर्यावरण और जनसंचार के परस्पर सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।
2. पर्यावरण के संरक्षण में जनसंचार की भूमिका एवं महत्व पर आलोचनात्मक लेख लिखिए।
3. पर्यावरणीय संचार के विभिन्न माध्यमों की विवेचना कीजिए।
4. पर्यावरणीय जागरुकता उत्पन्न करने में रेडियो और दूरदर्शन कैसे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, विस्तार से समझाइए?
5. पर्यावरण की रिपोर्टिंग करते समय किन तथ्यों का ध्यान रखना चाहिए?
6. पर्यावरण संचार के क्षेत्र कौन से हैं? इन क्षेत्रों की विवेचना कीजिए।
7. हिन्दी समाचारपत्रों में आज भी पर्यावरण संबंधी रिपोर्टिंग, लेख, फीचर आदि के प्रति उपेक्षा हो रही है? इसे कैसे किया जा सकता है, अपने विचार लिखिए।
8. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिए :
   (क) सतत् विकारा और पर्यावरण
   (ख) पर्यावरणीय चेतना '

(ग) पर्यावरणीय प्रदूषण

(घ) पर्यावरणीय क्षय

इकाई 8 भारत में पर्यावरणीय आन्दोलन (Environmental Movements in India)

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य
8.2 प्रस्तावना
8.3 पर्यावरणीय आन्दोलन: पृष्ठभूमि
8.3.1 शान्तघाटी या साईलेन्ट वैली
8.3.2 चिपको आन्दोलन: भारत में पर्यावरणीय आन्दोलन का जनक
8.3.3 चिपको: संरक्षण का अभिनव जन आन्दोलन
8.3.4 दक्षिण भारत में एप्पिको आन्दोलन
8.4 निजी क्षेत्र और सरकार का सम्बन्ध
8.5 भोपाल गैस त्रासदी
8.6 टिहरी बांध
8.7 विष्णुप्रयाग बांध
8.8 कान्जेन्ट्रिक्स और राजनैतिक सोच
8.9 बेलियडिला विवाद
8.10 वन्य जीवन एवं वनों की रक्षा के लिए अन्य प्रमुख आन्दोलन
8.10.1 चिलिका आन्दोलन
8.10.2 नर्मदा परियोजना आन्दोलन
8.10.3 पारीस्थितिकीय कार्यदल
8.11 पर्यावरणीय क्रान्ति
8.12 सारांश
8.13 निबंधात्मक
8.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.1 उद्देश्य

भारत में पर्यावरणीय आन्दोलन का एक अनवरत इतिहास है। 'चिपको आन्दोलन' भारत में पर्यावरणीय आन्दोलन का जनक माना जाता है। नर्मदा बचाओ आन्दोलन, सरदार सरोवर योजना, पानी बचाओ आन्दोलन आदि ने जनमानस को झकझोरा है और उन्हें पर्यावरण के प्रति चिन्तन कराया है। समय के साथ मानव समाज में विकास के द्वारा मानव के अपने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कार्यो के माध्यम से अपने पर्यावरण को विस्तृत कर लिया है।

- इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप यह जान सकेंगे कि भारत जैसे परम्परा और संस्कृति वाले देश में जहां प्रकृति। और पर्यावरण पोषण जीवनशैली के अंग रहे हैं वहां किन कारणों से पर्यावरण के संरक्षण हेतु आन्दोलन पैदा हुए।

- आप यह भी बता सकेंगे कि इन पर्यावरणीय आन्दोलनों का भारत की राजनीति एवं पारिस्थितिकी पर क्या प्रभाव पड़ा ?
- इकाई के अध्ययन से आप भारतीय जनमानस में पर्यावरण के प्रति सोच से अवगत हो सकेंगे।
- आप विश्लेषण कर सकेंगे कि भारत एवं अन्य देशों में घटित किन पर्यावरणीय त्रासदियों की पर्यावरण चेतना की दृष्टि से क्या-क्या प्रभाव पड़े।
- आप यह भी बता सकेंगे कि पर्यावरण की रक्षा के लिए चलाये गए विभिन्न आन्दोलनों की पृष्ठ भूमि में भारत के पर्यावरण चिन्तन एवं परम्पराओं ने क्या भूमिका निभाई।
- आप पर्यावरणीय आंदोलन के विचारक तथा उनकी कार्य शैली से परिचित हो सकेंगे। भारत में पर्यावरणीय आंदोलन को अच्छी तरह जान सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

भारत में आर्थिक विकास में जनभागीदारी तथा स्थानीय पारिस्थितिकी की अवहेलना हुई इससे अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हुई। भारत में पर्यावरणीय योजनाओं, औद्योगिक एवं कृषि विकास की योजनाओं को तैयार करते समय भारत की पर्यावरणीय परम्पराओं और संस्कृति को ध्यान में नहीं रखा गया। इससे अनेक परिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हुई। इनका सीधा असर स्थानीय जनता पर पड़ा। सरकारी एवं राजनैतिक स्तर पर विकास के संदर्भ में पश्चिमी सोच हावी रही। इसलिए स्थानीय समुदायों के पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी चिन्तन का सरकारी स्तर पर चिन्तन से मेल नहीं हुआ। स्थानीय स्तर पर सामुदायिक एवं पर्यावरण 'के प्रति सचेत लोगों में असंतोष के स्वर उभरने लगे।

जहाँ सरकार के स्तर पर टिकाऊ विकास का दृष्टिकोण रहा वहां प्रकृति के निकट रहने वाले और प्रकृति पर निर्भर रहने वाले लोगों का यह मानना रहा कि प्रकृति की पूजा करना उसके द्वारा किए जा रहे मानवीय उपकार के लिए उसे धन्यवाद देना है। एक ओर जहां संगोष्ठियो एवं अन्य आयोजनों के पर्यावरण एवं विकास संबंधी चर्चाएँ चलती रही तो दूसरी ओर पर्यावरण के विनाश से सीधे प्रभावित होने वाले लोगों ने अनेक योजनाओं एवं पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाले मामलों को चुनौती देना शुरू कर दिया। कई योजनाओं के खिलाफ पर्यावरणीय आंदोलन चले और सरकार को पर्यावरण के मुद्दों के कारण विकास योजनाएं स्थगित करनी पड़ी।

देश में पर्यावरण के संरक्षण के लिए कई स्वयं सेवी संस्थाएं बनी। सुन्दरलाल बहुगुणा, मेघा पाटकर, चंडी प्रसाद भट्ट, अराधतिराय, राजेन्द्र सिंह आदि जैसे कई पर्यावरण को समर्पित लोग आगे आए। कई लोगों ने पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाले मुद्दों पर न्यायालयों एवं सर्वोच्च न्यायालय के द्वार खटखटाए और कई मामलों में न्यायालय के फैसलों को पूरा करने और पर्यावरण का संरक्षण करने के लिए सरकार को विवश होना पडा। इस इकाई में भारत के पर्यावरण आन्दोलनों की पृष्ठभूमि से पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय भारतीय चिंतन की झलक आप देखेंगे।

8.3 पर्यावरणीय आंदोलन : पृष्ठभूमि

पर्यावरण आंदोलन संगठित सामाजिक गतिविधि होती है जिसका लक्ष्य प्राकृतिक स्रोतों एवं संसाधनों का इस प्रकार उपयोग करने की दिशा की ओर होता है। जिससे इन संसाधनों एवं स्रोतों का विकास अवरूद्ध न हो। इस प्रकार के आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य पर्यावरणीय क्षय और विनाश को रोकना होता है। पर्यावरण के संरक्षण के लिए ये आन्दोलन ऐसी व्यवस्था की मांग करते हैं जिससे पर्यावरण का पुर्नउत्थान एवं पुनर्स्थापन करना सम्भव हो सके।

भारत में पर्यावरण की संरचना को कायम रखने और उसके विनाश पर रोक लगाने के लिए कई प्रकार के आन्दोलन समय-समय पर हुए हैं। अधिकांशत: देश की गरीब जनता खाद्यान्न उत्पादन के लिए वर्षा पर निर्भर रहती है। उनको भोजन तैयार करने या खाना पकाने के लिए गोबर के उपले या सूखी लकड़ी पर निर्भर रहना होता है। अनेक लोग बांस या लकड़ी से अपनी झोंपड़ियां या आश्रय तैयार करते हैं। आबादी का बड़ा हिस्सा ऐसा है जो अपने अस्तित्व और भौतिक जरूरतों की पूर्ति के लिए सीधे पर्यावरण और प्रकृति पर निर्भर रहते हैं। ऐसे लोगों को पारिस्थितिकीय प्रणाली पर आधारित लोगों (इकोसिस्टम पीपल) की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार भारत की कुल आबादी का आधे से अधिक भाग इन पारिस्थितिकी से सीधा सम्बन्ध रखने वालों का है। आधुनिकीकरण भौतिक समृद्धि के प्रौद्योगिकीय उपयोग एवं अन्य कारणों से प्रकृति की समृद्धि निरन्तर बढ़ने की ओर तथा दबाव में है। इस स्थानीय पारिस्थितिकीय प्रणाली की इन प्रणाली की इन प्रकृति पर निर्भर लोगों के जीवन को बनाए रखने एवं उन्हें सहारा देने की क्षमता निरन्तर सिकुड़ती जा रही है।

उदाहरण के लिए औद्योगिकीकरण, सिंचाई बांधों एवं खनिज खदानों अर्थात् माईलिंग के कारण वनों में वास करने वाले लाखों लोग बेघर हो गए या जंगलों से उजाड़ दिए गए। गत सदी के अर्द्धदशक में वनवासी किसान आदि लाखों इस आधुनिक विकास के कारण अपने घर से बेघर हुए हैं। इसी प्रकार पानी की दुर्लभता एवं प्राकृतिक स्रोतों में लगातार अकाल से हुई कमी के कारण भी अनेक आदिवासियों ने वनों का त्याग कर दिया। इन वनों और जंगलों से उजड़े लोगों को पारिस्थितिकीय शरणार्थी (इकोरिफयूजीज) कह सकते हैं। गुजरात और महाराष्ट्र में तो ऐसे हजारों लोग भूमि या गन्ने की उस पर नाश्ता (कलेवा) करके जैसे-तैसे गुजारा करने को विवश हैं। भारत में आबादी के एक तिहाई भाग को पारिस्थितिकीय शरणार्थी माना गया है ऐरने लोग अब मुक्ष रूप से प्रकृति से अपने जरूरतें पूर्ण करने में असमर्थ हैं और बेघर हुए लोगों की तरह ही जीवन बसर कर रहे हैं।

भारत की आबादी का एक छठा बाकी भाग ऐसा है जो प्रकृति की लागत पर हुए आर्थिक विकास के फायदों का उपयोग करते हैं। इनमें जिनका पास सिंचाई के साधन हैं ऐसे भू-स्वामी, औद्योगिक क्षेत्रों में उथली, नीली कॉलर या सफेद कॉलर वाले श्रमिक या कर्मचारी जो संगठित क्षेत्रों में कार्यरत हैं (जो भारत की श्रम शक्ति का 9 प्रतिशत हैं) एवं नगरीय व्यवसायों में काम करने वाले (अध्यापक, वकील, डाक्टर या चिकित्सक, सेवाओं एवं बैंकों आदि में कार्यरत ठेकेदार, सरकारी या अर्द्ध सरकारी संगठनों में कार्यरत) लोग शामिल हैं। ये लोग अपनी जरूरत की उपयोग वस्तुएं खरीदने की नगदी ताकत रखते हैं अर्थात् इनके पास क्रय शक्ति है। ये लोग

सरकार को किसी न किसी तरह मंहगाई भत्ते, कच्चे माल या सहायता राशि (सब्सीडी) देने के लिए मना लेते हैं। ऐरने लोगों को 'बायोश्पेयर' लोगों की संज्ञा दी गई है क्योंकि ये लोग ही प्राकृति के उत्पादों का उपयोग करने या इस पारिस्थितिकीय जगत का आनन्द उठाने की क्षमता रखते हैं। इसके विपरीत पारिस्थितिकीय प्रणाली के लोगों की पहुँच में बहुत सीमित प्राकृतिक स्रोत रह गए हैं। यही कारण है कि पर्यावरणीय विनाश एवं प्राकृतिक स्रोतों से सीधे प्रभावित लोग या पारिस्थितिकीय शरणार्थी माने जाने वाले लोग पर्यावरणीय आन्दोलनों में अगुवा है। इससे परोक्ष या प्रत्येक्ष रूप में एक सामाजिक सकट उत्पन्न हुआ है। यह विरोध और संकट सरकार उद्योगों एवं पर्यावरण का विकास के नाम दोहन करने वालों के खिलाफ है।

8.8.1 शान्त घाटी या साईलेन्ट वैली

शान्त घाटी या साईलेन्ट वैली केरल में 89 वर्ग कि.मी. में फैला वनस्पतियों की विविधता से भरा खजाना है। वर्ष 1980 में केन्द्रमुख परियोजना के अन्तर्गत कुन्थीपूज़ा नदी के स्वच्छ जल पर 200 मेगावाट का जल विद्युत संयन्त्र लगाने की वहां योजना थी। केरल सरकार इस परियोजना की स्थापना के प्रति बहुत इच्छुक थी। लेकिन वैज्ञानिकों, पर्याणविद् कार्यकर्ताओं एवं स्थानीय लोगों ने मिलकर इरा योजना के विरुद्ध आवाज उठाई। यह दलील दी गई कि उक्त योजना को लागू करने से घाटी के दुर्लभ प्रजाति के कुछ जीवों एवं अति दुर्लभ पुष्पों के पौधों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। यह भी कहा गया कि पश्चिमी घाट के करीब सदियों से दक्षिण श्रृंखला में सदियों से संरक्षित पारिस्थितिकीय प्रणाली भी इसे गम्भीरता से विध्वंस का शिकार हो जाएगी। सरकारी स्तर पर भी कुछ वैज्ञानिकों एवं इन्जीनियर्स ने इस बात का समर्थन किया। स्टॉक होम कान्क्रेन्स ऑन हयूमन इन्वायरमेन्ट में तय किए गए मुद्दों की भावना के साथ तत्कालीन भारत की प्रधानमंत्री ने भी इसमें रुचि ली एवं इस विवादास्पद बनी योजना को स्थगित करवाने में योग दिया। इससे पूर्व राष्ट्रीय स्तर तक और एक दशक तक चला यह हरित आन्दोलन शान्त घाटी में बांध निर्माण के खिलाफ एक सफल आन्दोलन सिद्ध हुआ।

इस प्रकार के पर्यावरणीय मुद्दे कभी लागलाभ विश्लेषणों एवं विकास की बातों से नहीं बल्कि पर्यावरणीय क्षति का अन्दाज लगाकर तय किए जाने की आवश्यकता होती है। ये बातें इस आधार पर भी निश्चित नहीं की जानी चाहिए कि एक आधुनिक एवं बराबरी की समाज संरचना के लिए पर्यावरणीय विविधता की कीमत चुकाना जरूरी है। कारण यह सुनिश्चित करना एक कठिन काम है कि ऐसी विकास योजनाओं से कितनी पर्यावरणीय एवं परिस्थितिकीय विविधता का विनाश हो सकता है और किसको इसके लिए कितनी कीमत चुकानी पडती है।

8.3.2 चिपको आन्दोलन भारत में पर्यावरणीय आन्दोलनों का जनक

उत्तर प्रदेश के गढवाल क्षेत्र में महात्मा गांधी की शिष्या मीराबेन ने जंगलों के कटने एवं जलसंकर उत्पन्न होने के बीच कोई निकट का सम्बन्ध खोजा या पाया। इस क्षेत्र में बुजुर्गों से यह भी सीखा कि क्षेत्र के सघन वनों का समाप्त होना या काटा जाना, पर्यावरण के लिए भारी क्षति साबित हुआ है। घनश्याम रातुरी नामक व्यक्ति ने इस संबंध में एक काव्य रचना भी की। उनकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं-

" अपने वृक्षों को बाहों में बांधो
इन्हें कटने और गिरने से रोको
यह हमारी पर्वत श्रृंखलाओं की है पाती,
रोको, रोकों मत लूटने दो इसे!

स्थानीय किस्म के वृक्षों से आच्छादित वन में आकर्षक एवं व्यावसायिक दृष्टि से उपयुक्त 'पाईन' वृक्ष भी स्थान लेने लगे लेकिन इरा प्रकार के वृक्षों से स्थानीय स्तर पर आर्थिक एवं पारिस्थितिकीय स्वदेशी स्थानीय वृक्षों से होने वाले लाभ नहीं हो पाए और इसका खामियाजा गढ़वाली महिलाओं को भुगतना पड़ा।

1970 में गंगा नदी की प्रमुख सहायक नदी अलकनंदा में बाढ़ आई। 1987 में इसकी दूसरी सहायक नदी भी पहाडी घसक या खिसकने से अवरुद्ध हुई। इसमें कलकत्ता तक बाढ का पानी फैला। पानी के साथ वृक्षों के मोटे तने बहाकर ले जाने के खिलाफ स्थानीय स्तर पर असंतोष उभरा। यह महसूस किया जाने लगा कि हिमालय के सघन वनों की उपयोगिता जल का प्रबंधन करना है न कि टिम्बर या लकड़ी की उपज देना।

सरकार को भी यह स्वीकारना पड़ा कि भारी मात्रा में पहाड़ी मिट्टी के कटाव, एवं बाढ़ों का कारण विकास के लक्ष्यों को लेकर वनों को काटकर सड़क, बांध या खनिज दोहन. के लिए खजाने आदि का पर्वतीय क्षेत्र निर्माण करता रहा है।

स्थानीय स्तर पर वनों एवं वृक्षों को काटने से रोकने के लिए 1980 के प्रारंभ में ' चिपको' हवा फैलने लगी। उदाहरण के लिए इन घाटी में माईनिंग या खदान गतिविधियों के खिलाफ आन्दोलन छेड़ा गया। नतीखला नामक खदान को रोकने के लिए लोगों ने एकजुट होकर श्रृंखला तैयार की जिसे सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के बावजूद समाप्त नहीं किया गया। इस आन्दोलन की मुख्य भावना निम्न पंक्तियों में व्यक्त की गई

हे बहिन, यह संघर्ष है संरक्षण का
अपनी पर्वत- श्रृंखलाओं और वनों का
इनसे ही मिलता हमको जीवन है
इन जीवित वृक्षों, झरनों को बांहों में भरलो,
इन्हें चिपकालो अपने हृदय से
डट जाओ, पर्वतों को खोदने से रोको
क्योंकि ये पर्वत खुदेंगे तो
मर जायेंगे ये वन- ये झरने
यह जीवन और अस्तित्व का संघर्ष है।

यह प्रकृति की रक्षा के लिए यों संघर्ष छिड़ा और यह मानवता की प्रकृति और अपने बचाव की लड़ाई थी। यह गीत, धरती, वनों एवं पर्वतों से मानव की करीब के रिश्तों और जुड़ाव की झांकी को रेखांकित करता है। यों दो दशक तक यह अशिक्षित महिलाओं का 'चिपको' आन्दोलन चला और आखिर उनकी जीत हुई। दुनिया का यह सबसे बड़ा 'चिपको आन्दोलन' पर्यावरणीय महाकाव्य बन गया। इस आन्दोलन की सफलता ने विष्णु प्रयाग में पन बिजली घर

या जलविद्युत संयन्त्र को फूलों की घाटी, टिहरी बांध की योजना को स्थगित कराने में योग दिया। इसका विरोध इस क्षेत्र के भूकम्पीय सम्भावनाओं का क्षेत्र होने के आधार पर भी किया गया।

8.3.3 चिपको संरक्षण का अभिनव जन-आन्दोलन

उत्तराखण्ड में जन्मा और चल रहा बहुचर्चित 'चिपको आन्दोलन' हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र में पेड़ों की कटाई रोकने का प्रतिकारात्मक आन्दोलन मात्र नहीं है, बल्कि प्रख्यात कृषि वैज्ञानिक डा. एम.एस. स्वामीनाथन के शब्दों को 'एक प्रत्यक्ष दर्शन है, एकजीवन्त विचार है। 'यह मौजूदा भोगवादी सभ्यता के खिलाफ एक निरन्तर बढ़ती हुई भोगलिप्सा की तृप्ति के लिए मानव को प्रकृति विजेता बनाकर सभ्यता आज स्वयं अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए पर्यावरण की समस्याओं

इस बगावत का प्रकट रूप मार्च, 1973 को चमोली जिले के मंडल गाँव में सामने आया, जहाँ उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा इलाहाबाद की एक खेल-कूद कम्पनी को काटने के लिए दिये गये अंगू (Ash) के पेड़ों को गांव के लोगों ने काटने नहीं दिया। कुछ समय पहले उन्हें बैलों का जुआ बनाने के लिए यह कहकर ये पेड़ नहीं दिए गए थे कि वन विज्ञान कि दृष्टि से यह सम्भव। नहीं है। लोगों ने प्रतिरोध के स्वर में कहा, 'जिन पेड़ों को हमने पाला-पोसा, उनका उपयोग हम अपने जिन्दा रहने के लिए तो नहीं कर सकते, परन्तु यहां से बहुत दूर आमोद प्रमोद के साधनों के निर्माण के लिए उन्हें ठेकेदार को बेचा जा सकता है। यह कैसा विज्ञान है?" उन्होंने यह बणिया विज्ञान को यह कहकर चुनौती दी कि 'यदि पेड़ काटने के लिए कुल्हाडी वाले आए तो हम चिपककर उनकी रक्षा करेंगे। " खेलकूद कम्पनी की कुल्हाड़ियाँ इसी जिले के केदारनाथ क्षेत्र में मन्दाकिनी घाटी की ओर मुड़ गई। वहां भी आन्दोलनकारियों ने उनका पीछा किया और वहां भी उन्हें उसी परिस्थिति का मुकाबला करना पड़ा।

भूक्षरण और भूस्खलन

सारे उत्तरी भारत को सुख और समृद्धि प्रदान करने वाली दो जीवन धाराओं - गंगा और यमुना- का उद्गम स्थल उत्तराखण्ड, भूस्खलन, भूक्षरण और सूखते हुए जलस्रोतों के कारण विपन्नता का प्रतीक बना हुआ है। यहां की धरती के लोगों को जीवन-निर्वाह के साधन देकर टिका पाने की सामर्थ्य समाप्त हो गई है। परिस्थिति विज्ञान (इकॉलाजी) का यह सिद्धान्त कि मिट्टी के पीछे मनुष्य भी दौड़ते हैं, यहां पर पूर्णया लागू होता है। भारत के कोने-कोने में यहां के लोग-मुख्यत: कार्यकारी युवा शक्ति- अपनी बुद्धि और श्रम को बेचने के लिए फैले हुए हैं। उत्तराखण्ड में जुलाई, 1970 में गंगा की एक मुख्य धारा अलकनंन्दा में अवरोध हुआ और बाढ़ आयी, जिसमें जन- धन की अपार क्षति हुई। जिस हिमालय की स्थिरता को स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने अपना स्वरूप बताया था, उसके कई गांवों में धँसने के चिन्ह दिखायी दिए कई स्थानों पर भूस्खलन के कारण लोग दब गए। इससे 'चिपको' आन्दोलन को एक नई दृष्टि मिली। वनों की उपयोगिता केवल तत्काल आर्थिक लाभ की दृष्टि से नहीं, बल्कि भूक्षरण और भूस्खलन को रोकने की दृष्टि से उससे भी अधिक है। मार्च, 1974 में अलकनंदा के ऊपरी

जलागम क्षेत्र में स्थित रेणी गाँव के निवासियों को इसी विचार ने वहां पर काटने के लिए अंकित पेडों को बचाने की प्रेरणा दी। वन विभाग की वैज्ञानिक कार्य-योजनाओं के अनुसार इन पेड़ों को कटाई के लिए एक ठेकेदार को बेचा गया था। उसके कुल्हाडी वाले श्रमिकों को महिलाओं ने यह कहकर जंगल से बाहर खदेड़ दिया कि "यह जंगल हमारा मायका है, हम इसे काटने नहीं देंगे' '।

पिछला इतिहास

मायका महिलाओं के लिए वह सुखद स्थान है, संकट के समय जिसकी सहायता उनका संबल बनती है। अनादि काल से जंगलों से वनवासियों को खाने के लिए कन्दमूल, फल, पशुओं के लिए चारा और जिन्दा रहने के लिए अन्य वस्तुएँ मिलती रही हैं। इस प्रकार वनों के साथ उनका एक अटूट प्रेम-सम्बन्ध था। इसका दर्शन आज भी उन दूर-दराज के आदिवासी क्षेत्रों में हो सकता है, जहाँ आधुनिक सभ्यता के संचार और यातायात के साधन नहीं पहुँच पाए हैं, जो अगम्य हैं। पिछली शताब्दी के मध्य में जब विदेशी शासन अपने आर्थिक- सामाजिक दर्शन को लेकर भारत में स्थिर हो रहा था, तो उसकी गिद्ध दृष्टि वनों पर पड़ी। वन उसके लिए व्यापार की वस्तु थे। वनों के व्यापारिक दोहन के लिए उनका प्रबन्ध सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। इसके खिलाफ वनवासियों ने बगावत की। राँची (बिहार) में इस बगावत के नेता बीरसा मुण्डा और यमुना के तट पर तिलाड़ी उत्तरकाशी (उ.प्र.) में शहीदों के स्मारक इसके साक्ष्य में खड़े हैं। उत्तराखण्ड में तो इस शताब्दी का आरम्भ ही वन नीति के खिलाफ जन- आन्दोलन में हुआ, जो सन् 1920 - 21 में स्वराज्य आन्दोलन का अंग बन गया।

इस पृष्ठभूमि में चिपको आन्दोलन ने वनवासियों के एक सदी पुराने दबे हुए आक्रोश को मुखरित किया। इस आन्दोलन की मांगें प्रारम्भ में आर्थिक थी, जैसे वनों और वनवासियों का शोषण करने वाली दोहन की ठेकेदारी प्रथा को समाप्त कर वन श्रमिकों की सहकारी समितियों की स्थापना, वन श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण, ग्रामवासियों के हक-हकूकों की सुरक्षा, नया वन बन्दोबस्त और स्थानीय छोटे उद्योगों के लिए रियायती कीमत पर कच्चे माल की आपूर्ति। परन्तु आन्दोलन का जन्म तो 30 मई, 1969 को उत्तरकाशी जिलादान के अवसर पर आचार्य विनोबा भावे के ग्रामदान ग्राम स्वराज्य आन्दोलन की कोख में से हुआ था। इस अवसर पर शहीदों के स्मारक के समक्ष वन दिवस का वह घोषणा पत्र भी पढा गया था जिसमें वनों और वनवासियों के बीच प्रेम-मूलक सम्बन्धों की स्थापना की घोषणा की गई थी। इसलिए वन और वनवासियों के प्रेम-मूलक सम्बन्धों की पुन: स्थापना की दृष्टि इसके पीछे थी, जो मांगों को मनवाने के लिए इससे पूर्व हुए वन आन्दोलनों की वन विनाश की पद्धति से भिन्न पेडों से चिपककर उनकी रक्षा की अभिनव पद्धति के रूप में इस आन्दोलन के कारण प्रकट हुई।

पर्यावरण की रक्षा

विश्व पर्यावरण पर स्टाकहोम सम्मेलन ने वनों की मुख्य पैदावार के रूप में प्राण-वायु और जल के महत्व को स्वीकारने के लिए वातावरण बनाया। इस प्रकार 'चिपको' आन्दोलन के लिए एक स्थानीय आर्थिक आन्दोलन से पर्यावरण की रक्षा के आन्दोलन की ओर बढ़ने का मार्ग

प्रशस्त हुआ। रेणी के बाद अगस्त, 1974 में उत्तराखंड सर्वोदय परिवार ने हिमालय से निकलने वाली नदियों के पर्वतीय जलागम क्षेत्रों में पांच वर्षो तक हरे पेड़ों की कटाई रोकने की मांग को आर्थिक मांगों से ऊपर पहला और सर्वोपरि स्थान दिया। इस बीच 'चिपको' कार्यकर्ताओं का ध्यान विरोजा और तारपीन बनाने के लिए चीड़ के पेड़ों से लीसा निकालने के लिए किए जा रहे गहरे घावों से होने वाली क्षति की ओर गया। वनों की रक्षा के सब पहलुओं पर पुनर्विचार करने के लिए सरकार मजबूर हो, इसके लिए सितम्बर- अक्टूबर, 1974 में वनों की नीलामी के अवसर पर धरने देकर उसमें अवरोध पैदा किया गया तथा उपवास के द्वारा ध्यानाकर्षण का प्रयास किया गया।

परन्तु आन्दोलन का पूर्णतया: परिस्थितिकयि स्वरूप (इकॉलाजिकल आस्पेक्ट) तो तब निखरा जब उत्तराखण्ड के पांच मनीषियों ने 'चीड़ के पेड़ों का क्रन्दन' अपील निकालकर उनकी रक्षा के लिए जनता का आह्वान किया। इस अपील के उत्तर में 30 मई, 1977 को टिहरी-गढ़वाल जिले की हेंवल घाटी के लोगों ने घायल चीड़ के पेड़ों पर गीली मिट्टी की पट्टी करके और उसके बाद उनसे लीसा (गोंद) निकालने के लिए ठोंकी गयी लोहे की पत्तियाँ उखाड़कर उनकी रक्षा की।

इन सब घटनाओं के बीच लोकनायक जयप्रकाश नारायण, काका कालेलकर, आचार्य दादा धर्माधिकारी और अन्य मनीषियों की हिमालय-रक्षा के लिए राष्ट्रीय अपील निकाली। इसमें हिमालय के वनों की रक्षा के लिए 'चिपको' आन्दोलन की मांगों का समर्थन करते हुए सरकार से वन नीति में आमूल-चूल परिवर्तन करने की मांग की गई थी। इस अपील की दिल्ली, लखनऊ और हिमालय स्थित राज्यों की राजधानियों में तो कोई सुनवाई नहीं हुई लेकिन हेंवल घाटी की ही महिलाओं ने वहां पर अदवाणी गांव में काटने के लिए अंकित पेड़ों का रक्षा-बन्धन कर उनकी रक्षा करने का संकल्प प्रकट किया। उन्होंने वनों की कटाई और वनाधारित उद्योगों से रोगजार की अल्पजीवी अर्थव्यवस्था के नारे

"क्या है जंगल के उपकार, लीसा, लकड़ी और व्यापार। "

को चुनौती देते हुए इससे बिलकुल भिन्न स्थायी अर्थ-व्यवस्था के इस मन्त्र का घोष किया-

"क्या है जंगल के उपकार? मिट्टी, पानी और बयार।
मिट्टी पानी और बयार, जिन्दा रहने के आधार। "

महिलाओं की वेदना

पहाड़ी की उपजाऊ मिट्टी के बहकर चले जाने से रोजगार के लिए पुरुषों के पलायन के फलस्वरूप गृहस्थी का सारा भार महिलाओं पर पड़ता है। पशुओं के लिए घास-चारा, रसोई के लिए ईंधन और पानी का प्रबन्ध करना खेती के अलावा उनका मुख्य कार्य है। इनका वनों से सीधा सम्बन्ध है। वनों की व्यापारिक दोहन की नीति ने घास-चारा देने वाले चौड़ी पत्तियों के पेड़ों को समाप्त कर सर्वत्र चीड़-देवदार के शंकुधारी धरती को सूखा बना देने वाले पेड़ों का विस्तार किया है। मोटर-सड़कों के विस्तार के बाद कटने वाले पेड़ों के ठूंठ तक मशीनों का पेट भरने के लिए चले जाते हैं। अत: वन क्षेत्रों में ही ईंधन का अभाव हो गया हैं।

शंकुधारी प्रजातियों की जल धारण करने की अल्पक्षमता के कारण पानी के स्रोत सूख गए हैं, लट्ठों के रूप में पेड़ों को काट-काटकर लुढकाने से धरती की चमड़ी उधेड हो जाती है और कृत्रिम नाले बन जाते हैं, जिससे रही-सही कृषि भूमि भी नष्ट होती जा रही है। इस विनाशलीला को रोकने की चिन्ता धरती के साथ प्रत्यक्ष जुड़ी हुई महिलाओं के अलावा किसे हो सकती है ? वे जानती है, मिट्टी के बहकर जाने के कारण ही पुरूषों को घर छोड़ना पड़ा और उन्हें सधवा होते हुए भी बैधव्य का जीवन बिताना पड़ रहा है। मिट्टी रुकेगी और बनेगी तो खेती का आधार मजबूत होगा। पुरुष घर पर टिकेंगे। इसका एकमात्र उपाय है-रहे-सहे हरे पेड़ों की रक्षा, क्योंकि पेड़ मिट्टी को बनाने और पानी देने का कारखाना है।

उधर सरकार ने, जो वैज्ञानिक दोहन की संज्ञा देकर वनों में पेड़ों की कटाई-छटाई करती है, इन अनपढ़ महिलाओं को वन विज्ञान सिखाने के लिए वनाधिकारी को भेजा। उसका दिन-दहाड़े जलती हुई लालटेनों से स्वागत किया गया। महिलाओं ने कहा- 'जहाँ से पेड़ कटे वहां से रेड़े आये। भूस्खलन हुआ। नए पेड़ तो उगे ही नहीं। " किताबों में लिखे वन विज्ञान के सिद्धान्तों को चुनौती देने के लिए उनके पास पिछले वर्षो कटे इस प्रकार के वनों की दुर्दशा का प्रत्यक्ष प्रमाण था।

जब अदवाणी के जंगल में लालच देकर पेड़ काटने के कुल्हाडी वालों के सब प्रयत्न विफल हो गए तो 1 फरवरी, 1973 को सशस्त्र पुलिस के 50 जवानों की एक टुकड़ी वनाधिकारियों और ठेकेदार द्वारा भाड़े के कुल्हाडी वालों के संरक्षण के लिए पहुँची। स्वयं स्त्रियाँ यह कहते हुए पेड़ों पर चिपक गयी, "पेड़ नहीं, हम कटेंगी। "संगीनें तनी को तनी गयी। इस अहिंसक प्रतिकार का उनके पास कोई उत्तर नहीं था। इन्हीं महिलाओं ने पुन: सशस्त्र पुलिस के कडे पहरे में 9 फरवरी, 1978 को नरेन्द्र नगर में होने वाली वनों की नीलामी का विरोध किया। वे गिरफ्तार कर जेल में बन्द कर दी गई। बाद में अल्मोड़ा जिले में चांचरीधार और चमोली में भ्यूडार में जनता जन- आन्दोलनों के दारा पेड़ों की कटाई रोकने में सफल हुई।

अगस्त, 1978 में उत्तरकाशी के लोगों ने देखा कि भागीरथी का पानी गायब हो गया। यह एक पहाड़ के टूट जाने से भागीरथी और उसकी सहायक नदी कनोडिया गाड़ पर बनी झीलों के फलस्वरूप हुआ था। जब ये झीलें टूटी तो उसके बाद आयी बाढ़ ने यह सिद्ध कर दिया कि पहाड़ी में खड़ा प्रत्येक हरा पेड़ बाढ और भूस्खलन के खिलाफ एक जिन्दा सन्तरी है। जहाँ-जहाँ पेड़ खड़े थे उन्होंने बाढ़ के वेग को नियन्त्रित किया। परन्तु चिपको आन्दोलन के सामने सबसे बड़ी चुनौती तो बाल गंगा घाटी के अमरशर जंगल में उस समय आई जब राज्य सरकार के प्रतिहान उ.प्र. वन निगम ने स्थानीय श्रमिकों से 1 दिसम्बर को पेड़ कटवाना प्रारम्भ कर दिया, इसके विरोध में सर्वोदय सेवक श्री धूमसिंह नेगी के पांच दिनों के उपवास से जनता में जागृति आयी और श्रमिकों ने कुल्हाड़ियाँ छोड़कर अपने ढालदार खेतों को बागवानी के लिए तैयार करने हेतु फावड़े उठा लिए।

आन्दोलन का दूसरा मोर्चा अलकनंदा की सहायक बडियार गाड़ का माल गुड्डी क्षेत्र रहा, वहाँ लगभग ढाई हजार पेड़ कटने के लिए अंकित थे। इस क्षेत्र में पिछले वर्षो जहां-जहां पेड़ काटे गये थे, भूस्खलन और बाद से जन- धन और कृषि भूमि की अपार क्षति हुई थी। यहाँ पर

25 दिसम्बर को जन- आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिसमें सैकडों महिलाओं ने भाग लेकर पुलिस की मदद से भी पेड़ कटवाने से सब प्रयास विफल कर दिए। इस जंगल में 9 जनवरी, 19? 9 को प्रारम्भ हुआ प्रार्थनामय उपवास 13 दिनों तक जगल में चला और उसके बाद गिरफ्तार किए जाने पर टिहरी और देहरादून की जेलों में 1 फरवरी तक जारी रहा। सरकार ने तीन स्थानों पर वनों की कटाई तत्काल रोक दी और हिमालय के वनों को संरक्षण वन (प्रोटेक्शन) घोषित करने के प्रश्न पर बातचीत का न्यौता दिया। इस सम्बन्ध में निर्णय होने तक गढवाल और कुमायूँ मण्डलों (उत्तराखंड) में हरे पेड़ों की नीलामी, कटाई और छपान बन्द करने की घोषणा कर दी। इसी दौरान ध्याड़ी (अल्मोड़ा) में पेड़ों की कटाई के खिलाफ युवकों द्वारा जन- आन्दोलन संगठित किया गया और हरे पेड़ों की कटाई बन्द करायी गयी।

चिपको आन्दोलन की मांगें

छः वर्षो के बाद चिपको आन्दोलन परम्परागत अल्पजीवी विनाशकारी अर्थव्यवस्था के खिलाफ स्थायी अर्थव्यवस्था इकॉलोजी-का एक सशक्त जन आन्दोलन बन गया है। आन्दोलन की मुख्य मांग यह है कि हिमालय के वनों की मुख्य उपज राष्ट्र के लिए जल है और कार्य मिट्टी बनाना, सुधारना और उसे टिकाए रखना है। इसलिए इस समय खड़े हरे पेड़ों को कटाई उस समय (10 से 25 वर्ष) तक स्थगित रखी जानी चाहिए जब तक राष्ट्रीय वन नीति के घोषित उद्देश्यों के अनुसार हिमालय में कम से कम 60 प्रतिशत क्षेत्र पेड़ों से आच्छादित नहीं हो जाता है। मृदा ओर जल संरक्षण करने वाले इस प्रकार के पेड़ों का युद्ध स्तर पर रोपण किया जाना चाहिए, जिनसे लोग भोजन, वस्त्र की अनिवार्य आवश्यकताओं में स्वावलम्बी हो सकें। पांच एफ (फूड, जिसमें नट्स, फ्रूट्स, तेल देने वाले फलों के बीच, शहद शामिल हैं, फोड्डर, स्थूल फर्टिलाइजर, फाइबर) पेड़ लगाए जाएँ। खाद्य, चारा, ईंधन, उर्बरक और रेशा देने वाले पेड़ों का रोपण सर्वत्र ढालकर कृषि भूमि और वन पर किया जाए।

इस प्रकार के पेड़ों को लोग उत्साहपूर्वक लगाएंगे और उनकी रक्षा भी करेंगे। आज वन विनाश का एक मुख्य कारण वनवासियों के जीवन आधार प्राकृतिक वनों को उजाड़कर उद्योग व्यापार के महत्व की एकल प्रजातियों को नफा कमाने के लिए अपनाया गया। इनमें स्थानीय लोगों की कोई दिलचस्पी नहीं थी। इनसे से पहाड़ों में चीड़, देवदार आदि शंकुधारी प्रजातियों और मैदानों में यूक्लिप्टस आदि से धरती का उपजाऊपर नष्ट हुआ है। भारत कृषिप्रधान देश है और यहां पर वानिकी का उद्देश्य कृषि को पुष्ट करना होना चाहिए। चीन में जहाँ सर्वाधिक विनाश हुआ था वानिकी की कृषि का आधार बनाकर अपनी उजड़ी हुई व्यवस्था को सँभाला है। वन प्रबन्ध और संरक्षण-संवर्द्धन में लोगों की प्रत्यक्ष भागीदारी आवश्यक है।

चिपको हिमालय के लोगों की समस्या का ही नहीं, सारी मनुष्य जाति की समस्याओं का उत्तर है। विश्व की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है जबकि कृषि भूमि घट रही है। सन् 1950 में विश्व की ढ़ाई अरब जनसंख्या के लिए प्रति व्यक्ति 0.241 हेक्टेयर अन्न पैदा करने योग्य कृषि भूमि थी। सन् 1975 में जनसंख्या बढ़कर 3 अरब 91 करोड़ हो गयी और विस्तार के बावजूद भी कृषि भूमि का क्षेत्र प्रति व्यक्ति केवल 0.181 हेक्टेयर रह गया। परन्तु सन् 2000 में तो विश्व की जनसंख्या बढ़कर 6 अरब 29 करोड़ हो जायेगी और प्रति व्यक्ति 0.124

हेक्टेयर कृषि भूमि ही अन्य उपजाने के लिए रह जाएगी। सन् 1950 से 1971 के बीच प्रति हेक्टेयर अनाज की पैदावार 276 किग्रा. से बढ़कर 360 कि.ग्रा. हो गयी परन्तु 1971 और 1977 के बीच यह घटकर 354 कि.ग्रा. हो गयी। इसलिये अधिकांश देशों को भूमि की भूख, अन्न की कीमतों में वृद्धि और व्यापक जन- असन्तोष का मुकाबला करना पड़ेगा। इस विश्वव्यापी समस्या का एकमात्र हल वृक्ष खेती है। जितने लोगों का गुजारा एक हेक्टेयर पर काष्ठफल और अन्य फलों से हो सकता है। उतने ही लोगों को जिन्दा रहने के लिए गेहूँ और चावल उगाने के लिए 20 हेक्टेयर भूमि चाहिए।

जनचेतना

चिपको आन्दोलन अलकनंदा के 1,300 वर्ग किलोमीटर के ऊपरी जलागम क्षेत्र में दस वर्षों के लिए वनों की कटाई बन्द करने में सफल हुआ। कुछ छुट-पुट स्थानों में भी जहाँ वनों की कथित वैज्ञानिक कटाई के फलस्वरूप तबाही हुई थी, वनों की कटाई बन्द कर भूस्खलन की रोकथाम के लिगं उपचारात्मक अभियन्त्रण कार्य (इंजीनियरिंग वर्क) किए गये हैं। सर्वाधिक क्षतिग्रस्त ग्राम वनों को फिर से हरा- भरा बनाने के लिए एक अलग विभाग की स्थापना हुई है' चीड़ के पेड़ों के लिए घातक लीसा निकालने के लिए गहरे घात करने की परम्परा पर कुछ समय के लिए रोक लगी है सब छोटे-मोटे सुधार हैं। वन नीति में आमूलचूक परिवर्तन कर पर्वतीय वनों को संरक्षण वन घोषित करने की मुख्य मांग अभी अधर में लटकी हुई है।

परन्तु इस आन्दोलन की जो सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाएगी और जिसे इसके कटु आलोचक भी स्वीकार आलोचना भी स्वीकार करते हैं, वह है जन-जन में वृक्ष चेतना, संरक्षण के वैज्ञानिक विचार की स्वीकृति और उसके लिए क्रियाशील होना। इसका प्रमाण मिलता है घसियारी स्त्रियों और ग्वालों द्वारा गाये जाने वाले इन विषयों के मधुर लोकगीतों और गगनभेदी नारों में। लोक कवियों ने, जिनमें स्वयं आन्दोलन के मोर्चो पर जाकर प्रेरणा देने वाले घनश्याम 'सैलानी' मुख्य हैं, इन भावनाओं को व्यक्त करने वाले सरस गीतों की रचना की है। उनके 'पेड़ की पुकार' रचना इस प्रकार है-

"तुम्हारे लिए जीवित रहना चाहता हूँ इसलिए मैं युगों से इरा धरती पर खड़ा हूँ। मैं तुम्हारे ही लिए फूलता- फलता हूँ और फूलों-फलों में मिठास भरकर तुम्हारे सामने झुकता रहता हूँ। मैं हवा, पानी और छाया लेकर तुम्हारी फसलों को पालता-पोसता हूँ। मैं अन्न हूँ मैं दूध हूं। मुझे मत काटो। मुझे पीड़ा लगती है, इसलिए तो मेरा नाम पेड़ है। मेरी रक्षा करो। मुझे लगाओ और धरती को सजाओ, खेत की मेंड पर, पहाड़ की ढाल पर मैं खड़ा हूँ। मैं मिट्टी को बचाता हूँ उसे बनाता हूँ। मुझे मत काटो, याद रखो नीचे गाव हैं। '

छोटे-छोटे बच्चों में जो 'चिपको' आन्दोलन में महिलाओं के साथी रहे हैं, धरती माता की रक्षा के लिए अभूतपूर्व त्याग की भावनाओं का विकास हो रहा हे। सिल्यारा गाँव के एक दस वर्षीय बालक धर्मेन्द्र से जब यह पूछा गया कि वह पांच कि.मी. दूर अमरसर के जंगलों में पेड़ पर चिपकने के लिए क्यों गया? तो उसका उत्तर था, 'पिछली बरसात में भूस्खलन के कारण हमारे सब खेत नष्ट हो गये थे। मेरी विधवा माँ फूट-फूटकर रोयी क्योंकि उसके पास हम तीन

भाईयों का पालन-पोषण करने के लिए दूसरा साधन नहीं था। मुझे लगा कि दूसरे गाँव में पेड़ कटेंगे तो वहां भी रेड़ा आवेगा और खेत दबेंगे। मेरी मा की तरह दूसरी माँ भी रोएगी। माताओं के आँसू पोंछने के लिए मैं इस आन्दोलन में शामिल हुआ"

हिमालय का क्षेत्र बीहड़, ऊबड़-खाबड़ और बिखरी हुई आबादी वाला है। यद्यपि हिमालय प्रकृति के महाविनाश का, जो पिछले 2-3 वर्षों में भारत - नेपाल तिब्बत सीमा पर तवाघाट और नेपाल के कई स्थानों पर भूस्खलन, लाहौर स्थिति के भूकम्प, भागीरथी के अवरोध, टौंस घाटी, हिमाचल प्रदेश व लद्दाख में बाढ़, भूस्खलन की तबाही तथा लाहौर स्थिति व हिमाचल प्रदेश में हाल ही में हुए हिम-स्थलों के रूप में प्रकट हुआ, सबसे बड़ा उदाहरण है। वहाँ के निवासियों का वह युग-युगों से अपने वनों और नदियों के द्वारा पुत्रवत् पालन-पोषण करता रहा है, परन्तु अब सहनशीलता की सीमाओं को लाघती हुई छेड़छाड़ के कारण इतना क्रुद्ध हो गया है कि वह पत्थर बरसाने लगा है।

उत्तराखण्ड में वहां की रचनात्मक संस्थाओं और कार्यकर्ताओं ने लगभग 40 वर्षों से सेवारत राष्ट्रपति महात्मा गांधी की अंग्रेज शिष्या सुश्री सरला बहन के मार्गदर्शन में पर्वतीय विकास की सही दिशा का दर्शन कराने वाली एक योजना प्रस्तुत की है, जिसे पहाड़ों में जिन्दा रहने का अधिकार-पत्र नाम दिया।

चिपको के सामने संकट

परन्तु जैसा अनादिकाल से होता आया है, यथास्थिति में परिवर्तन लाने वाले हर नए विचार और आन्दोलन की समाज में रूढ़ के प्रहार का मुकाबला करना पड़ता है। चिपको आन्दोलन की इस समय वन ठेकेदारों, उद्योगपतियों और उनको सह देने वाली राजनैतिक और प्रशासनिक शक्तियों के संगठित विरोध का मुकाबला करना पड़ रहा है। वनों के व्यापारिक प्रबन्ध के पक्ष की पुष्ट करने के लिए उनके पास तुरन्त आर्थिक लाभ देने के लोभ का आकर्षण नारा है। इसके साथ ही आन्दोलनकारियों का दमन करने के लिए कानून की तलवार है। जहाँ तक इकॉलोजी का विचार है, भाषणों के द्वारा उसका समर्थन आज का फैशन हो गया है, क्योंकि चिन्तन के क्षेत्र में बुद्धिजीवी और वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँच गए हैं कि अब राजनीति का युग समाप्त हो गया है और इकॉलाजी का युग प्रारंभ हुआ है। (सुन्दरलाल बहुगुणा)

8.3.4 दक्षिण भारत मैं एप्पिको आन्दोलन

चिपको आन्दोलन का असर भारत के दूसरे भागों तक भी पहुँचा। कर्नाटक के उत्तर कन्नड़ क्षेत्रों में पश्चिमी घाटों में ग्रामीणों को चिपको आन्दोलन ने प्रेरित किया और उन्होंने एप्पिको आन्दोलन शुरु किया। जहाँ टिम्बर प्राप्त करके व्यावसायिक लाभ के लिए जंगलों का विनाश किया जा रहा था। ठेकेदारों दादा प्राकृतिक दृष्टि से समृद्ध इस इलाके में हरे वृक्षों को काटा जा रहा था। इससे भारी मात्रा में मिट्टी का कटाव होने लगा और जलस्रोत सूखने लगे। सिरसी के कल्कानी गांव में जंगल का आसपास एक टुकड़ा बच गया था जहां से जलाउ, लकड़ी,

पशुओं के लिए चारा, थोड़ा शहद आदि ग्रामीणों को मिलता था और उसी पर उनका अस्तित्व रह गया था।

सितम्बर, 1983 में इस स्थिति ने दक्षिण भारत में युवकों एवं महिलाओं को चिपकों जैसा आन्दोलन छेड़ने को विवश होना पड़ा। सल्कानी और आसपास के गाँवों के युवा एवं महिलाऐं पांच मील पैदल चलकर नजदीक के जंगल में पहुँचे और वृक्षों से लिपट गए। राज्य के वन विभाग के आदेश से जो कुल्हाडियों वृक्षों को काटने के लिए चल रही थी वे इससे बन्द हो गई। लोगों ने हरे वृक्षों को काटने पर पाबन्दी लगाने की मांग रखी। हरे भरे वृक्षों की रक्षा के लिए वे अपने प्राणों तक का त्याग करने को तैयार हो गए। जंगल में यह जनता का विरोध और आन्दोलन 3 छ दिन तक चला। परिणाम यह हुआ कि वृक्ष काटने के अपने आदेश को वापिस लेने के लिए सरकार को विवश होना पड़ा। प्रारम्भ में सरकार ने जनभावनाओं की पूरी तरह अवहेलना की लेकिन अन्त में सरकार को झुकना पड़ा।

लेकिन कुछ समय बार हरे वृक्षों को काटने का इस जंगल में पुन: सिलसिला शुरु हो गया। स्थानीय लोगों में इसकी तीखी प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने फिर वृक्षों को न काटने के लिए विरोध करते हुए वृक्षों से 'चिपको आन्दोलन' फिर छेड़ दिया। इसमें स्थानीय जनता का पूर्ण समर्थन मिला। इस आन्दोलन में विरोध का स्वर इतना लोकप्रिय हुआ कि वृक्षों के काटने का ठेका लेने वाले के श्रमिक भी इस कार्य को छोड़ भागे।

आन्दोलन का अगला चरण भी शीघ्र शुरु हुआ। पहाड़ी ढलानों पर मौसमी सदाबहार या सदा हरे रहने वाले वृक्ष थे। यहाँ अधिकांश: आदिवासी निवास करते थे जो कि अपने अस्तित्व एवं जीवनचर्या के लिए पूर्णतया जंगल पर निर्भर थे। बांस की छाबडियाँ, चटाई आदि बनाना उनकी आय का प्रमुख स्रोत था। बांस का जंगल खत्म होने लगा और उनकी रोटी-रोजी का यह जरिया ही छिन गया। लेकिन ठेकेदारों के व्यावसायिक हित निरन्तर पूर्ण होते जा रहे थे। इस कारण वे गांव के जंगलों में लोगों ने आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

इस आन्दोलन की विशेषता यह थी कि यह स्वत: ही जनभावनाओं से प्रेरित था। इस बार आदिवासियों ने वृक्षों से चिपकना शुरु किया था। जल्दी ही यह आन्दोलन तेज गति पकड़ने लगा। परिणाम यह हुआ कि वन विभाग को जल्दी ही झुकना पड़ा। लेकिन हर्षी के वनों के लिए स्थानीय ठेकेदारों के लालच ने पुन: एथिको या वृक्षों के बचाव के लिए स्थानीय लोगों को आन्दोलन छेड़ने के लिए मजबूर किया। यहाँ लगभग एक सौ स्त्री-पुरूषों ने अपने हाथों को पकड़कर मानव श्रृंखला तैयार की ताकि वृक्षों का कटना सम्भव न हो सके। ठेकेदारों को व्यावसायिक लाभ के लिए जंगल के पेड़ों की लकड़ी की जरूरतें थी तो लोगों को तो केवल जलाऊ सूखी लकड़ी चाहिए थी। वृक्षों के काटे जाने से कृषि के औजारों के लिए भी लकड़ी की जरूरत पड़ने लगी। वनों में ठीक यूक्लेप्टीस के वनों में आ जाने से कृषि उपज पर प्रभाव पड़ा। केवल विविध प्रकार के वृक्षों से ही चारा, खाद, रेशे आदि मिल सकते थे जो कृषि उपज बढ़ाने में मददगार होते हैं। वन विभाग के अधिकारियों ने अपने प्रभाव एवं दबदबा दिखाते हुए आन्दोलन को स्थगित कराने की चेष्टाऐं की। लेकिन जनता ने वृक्षों को बचाने के लिए वृक्षों से चिपकना या 'एप्पिको' जारी रखा जो दक्षिण भारत में 'चिपको आन्दोलन' की तरह का आन्दोलन बन गया।

नवम्बर, 1983 में यह आन्दोलन निद्‌गोड (सिंगापुर ताल्श्रुना) में फैल गया जहाँ 300 लोग एकत्रित हो गए। यहां पर्यावरण एक ही प्रकार के वृक्ष लगाने के लिए सरकार ने 10 एक्ट जमीन तो साफ,कर दी थी लेकिन गाव के पास जंगल की पट्टी बच गई थी। लीग चाहते थे कि यह जंगल बचा रहे ताकि कम से कम उन्हें जलाऊ लकड़ी तो मिलती रहे। लेकिन सरकार नजदीक के सिद्धापुर कस्बे में काम लेने हेतु जंगल की लकड़ी ले जाना चाहती थी। लेकिन स्थानीय ग्रामीणों ने पेड़ों को काटने से रोका। यह सन्देश पास के तालुका में भी पहुँचा। एप्पिको सगठन ने आन्दोलन को आगे फैलाया। उसी महीने में सिद्धापुर तालुका के केलागिन जद्दी में भी वन बचाने के लिए आन्दोलन शुरू हुआ। एक प्लाईबुड बनाने वाली कम्पनी उस जंगल से सामग्री चाहती थी। वन विभाग ने तो 51 वृक्षों को काटने के लिए चिन्हित किया था लेकिन वृक्षो को काटने की प्रक्रिया में उस कम्पनी ने 542 पेड़ों को नष्ट कर दिया। ग्रामीण ने देखा कि इस प्रकार की कार्यवाही से तो उनका परम्परागत जलाऊ लक्खी, हरी खाद, चारा आदि का स्रोत ही मिट जाएगा और वे इन चीजों से वंचित हो जाएंगे। इसलिए यहां भी स्वत: प्रेरित होकर स्थानीय लोगों ने आन्दोलन छेड दिया। लगभग 15 दिन बाद पार्सी के जंगलों में भी ऐसा ही आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। वहां भी औद्‌योगिक टिम्बर प्राप्त करने के प्रयास चल रहे थे। वनों के अस्तित्व को मिटता देखकर वहां भी कोई 300 लोगों ने जंगल का कटना रोका।

इसी तरह उसी साल दिसम्बर, 1983 में विलगाल के वनों में भी पेड़ों की कटाई रोकने के लिए आन्दोलन खड़ा हुआ। वहा कभी टिम्बर की लकड़ी के व्यावसायिक उद्देश्यों एव पास के नगर सिरसी में जलाऊ लकड़ी काम में लेने का प्रयास किया गया था। इस प्रकार यहाँ भी अपने अस्तित्व दो खतरे में पड़ता देखकर स्थानीय लोगों में विरोधात्मक आन्दोलन शुरु हुआ और उन्होंने पेड़ों की कटाई बन्द करवाने में सफलता पाई।

उत्तराँचल में प्रारम्भ हुए चिपको आन्दोलन की तर्ज पर एप्पिको आन्दोलन दक्षिण भारत में एक आन्दोलन पृष्ठभूमि बन गया। इस आन्दोलन ने जंगलों को काटकर लाभ कमाने के ठेकेदारों की लालची प्रवृत्तियों एवं व्यावसायिककिरण का खुलासा किया। वन विभाग द्‌वारा जितने वृक्ष काटने के लिए चिंहित किए जाते उनमें कहीं अधिक वृक्षों का नाश करने की प्रवृत्तियों पर जन आन्दोलनों ने अंकुश लगाया। ठेकेदारों, वन विभाग एवं राजनीतिज्ञों के मिले जुले वन विनाश के षड्‌यंत्रों का पर्दाफाश करने में ये आन्दोलन सफल रहे। एप्पिको आन्दोलन अपने तीन लक्ष्यों को पाने में सफल रहा। इसका लक्ष्य था - 1. वनों से आच्छादित धरती या वनों की रक्षा करना, 2 वृक्षों का आगे पोषण जारी रखने के प्रयास करना, 3 वन सम्पदा का ठीक उपयोग करना और प्राकृतिक स्रोतों का संवर्द्धन करना। स्थानीय स्तर पर स्थापित लोकप्रिय सगठन परिसर संरक्षण केन्द्र (पर्यावरण संवर्द्धन केन्द्र)उपरोक्त आन्दोलन के लक्ष्यों को पूरा करने में योग देते रहे। एप्पिको आन्दोलन ने लोगों के मौलिक जीवन स्रोतों को बचाने का कार्य किया। बांस के वन जो कि हस्तकला निर्माण के लिए उपयोगी है और जो स्थानीय लोगों की आय का स्रोत हैं, उन्हें सुरक्षित कर। स्थानीय जनता के उपयोग की औषधियों, वनस्पतियों की रक्षा की।

एप्पिको आन्दोलन इस प्रकार पूरे पश्चिमी घाट के ग्रामीण इलाकों के लोगों में जागृति उत्पन्न करने में सफल रहा। व्यावसायिक एवं औद्योगिक हितों को लेकर जिन लोगों ने वनों के लिए खतरा पैदा कर दिया था और स्थानीय लोगों के अस्तित्व के विनाश पर तुले थे, उस खतरे का मुकाबला किया।

इस आन्दोलन ने हिमालय क्षेत्र में हुए चिपको आन्दोलन के इस कथन को कि हिमालय की मिट्टी, जल एवं शुद्ध वायु आदि वनों की सम्पदा पर स्थानीय लोगों का अधिकार है प्रेरणा दी। इसी तरह पश्चिमी क्षेत्रों में यह अनुभव किया गया कि वनों के उत्पाद स्थानीय जनता की थाती है। इस प्रकार 'चिपको' और ' शान्तघाटी के आन्दोलनों' की तरह 'एप्पिको आन्दोलन' के माध्यम से लोगों ने प्राकृतिक स्रोतों के संवर्द्धन के लिए व्यूह रचना की तलाश करने की कोशिश की। वास्तव में, सम्पूर्ण जीवन को सम्बल देने वाली प्रणाली और मानवीय अस्तित्व को बचाए रखने का मात्रा विकल्प प्राकृतिक एवं पर्यावरणीय सम्पदा है। शान्तिपूर्ण ढंग से विरोध को प्रगट करना या चिपको या एप्पिको आन्दोलन जैसे आन्दोलन समाज में एक शक्तिशाली रूप से जनता को एकजुट करने का गांधीवादी तरीका था। इसमें न तो प्रकृति और न ही मानव एक दूसरे का शोषण एवं विनाश नहीं करते। इन आन्दोलनों का प्रारम्भ वास्तव में वर्तमान सभ्यता का मानवीय अस्तित्व के लिए उत्पन्न खतरे के प्रतिवाद का संकेत था।

प्रभानन्द चंदोला के शब्दों में - उत्तर का यह चिपको आन्दोलन दक्षिण में ' अप्पिको' आन्दोलन के रूप में उभरकर सामने आया है। एप्पिको कन्नड भाषा का शब्द है जो कन्नड में चिपको का पर्याय है। पर्यावरण सम्बन्धी जागरुकता का यह आन्दोलन अगस्त, 1983 में प्रकट हुआ। इस तरह चिपको और एप्पिको में लगभग दस साल का अन्तर रहा है। यह एप्पिको आन्दोलन बडेथी हाइडल प्रोजेक्ट के विरोध में उत्तर कन्नड के लोगों द्वारा शुरु किया गया। यह आन्दोलन पूरे जोश से लगातार एक मदीने और आठ दिन तक चलता रहा। युवा लोगों ने भी जब पाया कि उनके गांवों के चारों इकाई 8 ओर के जंगल धीरे- धीरे गायब होते 'जा रहे हैं तो वे इस आन्दोलन में जोर- शोर से लग गए। लोगों ने पाया कि कागज भारत में पर्यावरणीय पर तो प्रति एकड़ दो पेड़ों की कटाई दिखाई जाती है लेकिन असल में काफी अधिक पेड़ काटे जाते है और कई क्षतिग्रस्त कर दिए जाते है जिससे वनों का सफाया होता जाता है।

यहां के गांव वालों ने जन-विद्युत परियोजना की कार्यवाहियों को पूरी तरह से बदल डालने की मांग की है। आन्दोलन के (एक महीने और आठ दिन तक लगातार जंगलों की चौकसी करने की प्रक्रिया के दौरान उन्हें और भी कई बातों का पता लगा और वे प्रकृति के और नजदीक आ सके। बड़े पेड़ शिलाखण्डों और चट्टानों में जमे रहते हैं। कटाई से भूमि के नंगा होने से वर्षा-पानी से ऊपरी परत बहने लगती है और मुलायम तने वाले पेड़ भी उखड जाते हैं। पेडो से खाली हो जाने के कारण ऐसी भूमि में यूपिटोरियम नामक खरपतवार उगने लगती है और इसके अलावा और कुछ भी नहीं उग पाता। इसलिए गांव वालों ने हरे पेड़ों के काटे जाने पर पूरी तरह पाबन्दी लगाए जाने की मांग की है। उन्होंने अपनी आवाज बुलन्द की कि हम व्यापारिक प्रयोजनों के लिए पेड़ों को बिलकुल भी नहीं कटने देंगे और पेड़ों पर चिपककर हठधर्मिता अपनाकर बोलें कि पेड़ काटने हैं तो पहले हमारे ऊपर कुल्हाडी चलाओ।

अहिंसा के इस आन्दोलन ने अन्य स्थानों के लोगों को भी आकर्षित किया है। दो महीने में ही यह बात सारे इलाके में जंगल की आग की तरह फैल गई और अब यह आन्दोलन सात से भी अधिक अन्य स्थानों तक फैल चुका है। लोगों ने पाया कि जहाँ-तहाँ चोरी-छिपे या खुल्लमखुल्ला पेड़ों की कटाई और वन संहार होता रहता है। मिसाल के तौर पर सिद्दापुर तालुक के केलगिरि जद्दी वन में प्लाईबुड फैक्ट्री वालों ने 29 पेड़ काट गिराए और इस कटाई के दौरान 547 और पेड़ों को नुकसान पहुँचाया। गांव वालों को एहसास हो गया कि इस नुकसान की क्षतिपूर्ति मामूली जुर्माने से नहीं हो सकती है और काटे गए पेड़ कभी वापस नहीं आ सकते हैं।

आकड़ों के हिसाब से उत्तर कन्नड़ का वन क्षेत्र 80.7 प्रतिशत है लेकिन असल में देखा जाए जो यह केवल 26 प्रतिशत ही है। वनों को एक सम्बन्धी यानी एक ही जाति के वनों में रूपान्तरित किया जा रहा है, जिससे पारिस्थितिक तन्त्र को हानि पहुँच रही है। नतीजतन लोगों को वनों से खाद ओर चारा नहीं मिल पा रहा है। मधुमक्खी के छत्ते भी गायब हो गए हैं। हर परिवार पहले विभिन्न प्रकार के पेड़ों से प्रति वर्ष कम से कम चार टिन शहद बटोर लेता था। लेकिन उद्योगों के लिए अन्य पेड़ों को काटकर यूक्लिप्टस या सफेदे के पेड़ लगाने से अब वे शहद आदि से वंचित हो गए हैं। इस तरह कई अन्य समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं, जिनसे लोगों की परेशानियाँ हर तरह से बढ गई हैं।

8.4 निजी क्षेत्र और सरकार का संबंध

कागज और पल्य बनाने वाले कारखाने तथा रेयन निर्माता कारखाने औद्योगिक प्रदूषण पैदा करने वाले सबसे खतरनाक उद्योग साबित हुए बिड़ला समूह ने ग्वालियर रेयन की तीन इकाईयाँ केरल में चलियाव नदी के किनारे लगाई। नदी के ढलान वाले (डाऊनस्ट्रीम) क्षेत्रों में रहने वाले ग्रामीणों के स्वास्थ्य एवं आर्थिक कल्याण पर इन कारखानों ने कुप्रभाव डाला। केरल सास्तरा साहित्य परिषद् नामक एक स्वयंसेवी संस्था जिसकी वैज्ञानिक जागृति पैदा करने में शानदार भूमिका रही और जिसका दृष्टिकोण जनहित के साथ विकास का रहा, उसने इन कारखानों से उत्पन्न होने वाले प्रदूषण के खतरों का अध्ययन किया। इससे ग्रामीणों में जागृति आई और उन्होंने कारखाने के खिलाफ आन्दोलन छेड़ा और कारखाना मालिकों को अपना उद्योग बन्द करने को विवश होना पड़ा। इस उद्यम की प्रमुख कम्पनी जो कर्नाटक में 'हरियार पोलिफाईबर' का संचालन कर रही थी। बिना साफ किए उक्त संयन्त्र से प्रदूषित तत्वों को तुंगभद्रा नदी में डाला जाता था। लोगों ने इस बात की शिकायत की कि वे नई बीमारियों से ग्रस्त होने लगे हैं। मछली की उपज कम हुई है और सिंचाई पानी कम उपलब्ध होता है। इन शिकायतों एवं जन आक्रोश ने उक्त संस्थान के विरुद्ध आन्दोलन पैदा किया। इस प्रकार उद्यमियों के लाभ कमाने की प्रवृत्तियों एवं जन कल्याण के बीच एक संघर्ष उत्पन्न होने लगा।

ऐसा ही एक पर्यावरण सम्बन्धी मुद्दा महाराष्ट्र राज्य औद्योगिक विकास निगम ने उत्पन्न किया। इसके औद्योगिक क्षेत्रों में कार्यरत 40 औद्योगिक इकाईयों रागढ जिले में बिना साफ किये प्रदूषित तत्वों का विकास करती थी। आसपास का क्षेत्र इससे प्रदूषित हुआ किसान अपनी फसल एवं मछली पालन में इस प्रकार औद्योगिक प्रदूषित जल का उपयोग नहीं कर पाते थे तथा उनके द्वारा पकड़कर बेची जाने वाली मछलियां स्वास्थ्य की दृष्टि से खाने योग्य नहीं

पाई गई। इससे उस क्षेत्र के किसान और मकी पालकों में आक्रोश पैदा हुआ। उन्होंने बिना साफ किए प्रदूषित जल निगम के क्षेत्र के उद्योगों द्वारा नदी में डाले जाने के प्रति उदासीनता का विरोध किया। 1987 में क्रोधित किसानों ने प्रदूषित जल विकास

8.10.3 पारिस्थितिकीय कार्यदल

वनों की रक्षा के लिए आदिवासियों ने जिस प्रकार आंदोलन किए वैसे ही दक्षिण बिहार में सेवानिवृत सैनिकों ने पर्यावरण के विनाश की समस्या से जुड़ने के लिए एक. पारिस्थितिकीय कार्यदल या 'फोर्स' तैयार की। इसमे सेवानिव्रत को भर्ती किया गया। इस दल का कार्य वृक्ष लगाना, छोटे-छोटे बाध बनाकर मिट्टी का कटाव रोकना आदि रहा। राजस्थान में भी मिट्टी के टीलों को एक जगह स्थाई बनाए रखने के लिए इस तरह का कार्यदल है जिसके द्वारा खर्च की गई लागत डिफेन्स बजट में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा की जाती है। राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात आदि में पर्यावरण के लिए कार्यरत कई ऐसी संस्थाऐं हैं जिन्होंने पर्यावरण सरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। स्थानीय स्तर पर वनों एवं पर्यावरण को बचाने से ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को स्वास्थ्य एवं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा आय बढने के जो लाभ हुए, उनके कारण अनेक पर्यावरण के क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संस्थाऐं सफल रही है एव उनकी उपलब्धियों से अनेक लोगों ने प्रेरणा ली है।

8.11 पर्यावरण क्रान्ति

वास्तव में भारत में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के संरक्षण के लिए विभिन्न प्रदेशों में आयोजित आन्दोलनों की कड़ी में हिमालय क्षेत्र के गाला जिले में आयोजित 'चिपको आंन्दोलन' उत्प्रेरणा का एक ऐसा महत्वपूर्ण उदाहरण बन गया जिसने देश में अनेक पर्यावरणीय आन्दोलनों को गति दी। 'चिपको आन्दोलन' 1973 में शुरु हुआ। यह लगभग बीस साल से भी ज्यादा समय तक जारी रहा। यह आन्दोलन विकास की अवधारणा और सरकार के रवैये के खिलाफ पहाड़ी लोगों का बड़ा संघर्ष था। इस संघर्ष में कई मुद्दे जुड़ते गए और इसने कई रूप ग्रहण किए। सरकार से किसी जमाने में डरने वाले गिरिजनों एवं महिलाओं दारा अपनी शक्ति को समझने एवं उसका प्रदर्शन करने की एक प्रक्रिया थी।

यह आन्दोलन शुरू में उन ठेकेदारों के खिलाफ था जो व्यावसायिक दोहन के लिए जंगलों का सफाया कर रहे थे। इसके बाद 'चिपको आन्दोलन ' ने यह मांग रखी कि स्थानीय स्रोतों पर स्थानीय समुदाय का अधिकार होना चाहिए और वन प्रबंधन में उनकी भागीदारी होनी चाहिए। पर्यावरण के लिए समर्पित सुन्दरलाल बहुगुणा ने वनों के संवर्द्धन पर बल दिया तथा चण्डी प्रसाद भट्ट ने स्थानीय प्राकृतिक स्रोतों का प्रबंधन गिरिजनों को देने की मांग रखी। बाद में स्थानीय प्राकृतिक स्रोतों के मालिक स्थानीय लोगों को होना चाहिए और उन्हें उनका उपयोग करने की भी छूट होनी चाहिए, यह मांग भी जुड़ गई। इस आन्दोन में महिलाओं, गिरिजनों एवं गरीबों की महत्वपूर्ण भागीदारी रही। इस प्रकार इस पारिस्थितिकीय आन्दोलन के कर्णधारी पिछड़े वर्ग के साथ मुख्य रूप से महिलाओं ने भूमिका निभाई।

चिपको आन्दोलन एक इतना सशक्त आन्दोलन था जिसने 'एप्पिको', विष्णु प्रयाग, टेहरी बांध एवं नर्मदा जैसे आन्दोलनों को प्रेरित किया। चिपको आंदोलन की सफलता और शक्ति की जड़ें हिमालय क्षेत्र संचालित गांधीवादी विचारों के केन्द्रों में जमी थी। जहां सरला देवी बहुगुणा एवं राधादेवी ने ऐसे कार्यकर्ता तैयार किये थे जो प्रकृति का सम्मान करने और मनुष्य एवं प्रकृति के बीच संयोजक के संबंधों का प्रचार करते थे। सुन्दलाल बहुगुणा एवं चंडी प्रसाद भट्ट ने व्यावसायिक एवं उपभोक्ताओं हितों के लिए प्रकृति का दोहन करने के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने आधुनिक नगरीय एवं औद्योगिकी सभ्यता के वर्चस्व एवं उनके विकास की अवधारणा के खिलाफ सवाल उठाए। इस प्रकार भारत में आम आदमी को प्रकृति एवं पारिस्थिस्तकीय को बचाने के लिए प्रेरित करने वाला ये आंदोलन भारत के पर्यावरणीय आंदोलन में एक इतिहास बन गया।

'चिपको आन्दोलन' एक अनूठा आंदोलन था। जो दो दशक तक अहिंसात्मक ढंग से हजारों पहाड़ी निवासियों ने संचालित किया। इस आन्दोलन में महिलाओं ने बढ़-चढ कर हिस्सा लिया। पारिस्थिस्तकी एवं पर्यावरण आन्दोलन को नई भाषा एवं सम्प्रेषण प्रदान किया। इस आंदोलन में एक अटूट विश्वास की 'भावना थी। घर के पुरुष सदस्यों के बाहर काम पर जाने के बावजूद आंदोलन को गति देने में महिलाएं सक्रिय रही। इसने देश के अन्य आंदोलनों को एक नई दिशा और सोच दी।

ग्रामीण महिलाओं में अधिक से अधिक यह चेतना जगानी होगी कि चिपको' जैसे आंदोलन अब अतीत की चीज समझो जाए। ग्राम पच महिलाएं स्वयं आये आकर अपनी ताकत को पहचाने और हर बात से पर्दों की ओर न देखकर' स्वयं आगे आकर अपनी ताकत को पहचाने और हर बात में पर्दो की ओर न देखकर स्वयं इस पहल करें।

सुन्दरलाल बहुगुणा जो कि 'चिपको आन्दोलन ' के प्रणेता रहे। वे इस बांध के निर्माण के खिलाफ भूख हड़ताल पर इकाई 8 बैठे। उत्तर प्रदेश एवं केन्द्र की सरकार ने इस योजना की समीक्षा करने का वादा किया। लेकिन काम नहीं रुका फिर पर्यावरणीय भी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस बांध के खिलाफ आन्दोलन ने पर्यावरण के मुद्दे को बल दिया एवं लोगों में विकास आन्दोलन की भावना पैदा की कि पर्यावरण के विनाश की कीमत चुका कर विकास करना न्यायसंगत नहीं है।

8.7 विष्णु प्रयाग बांध

अस्सी के दशक के मध्य विष्णु प्रयाग के पास एक जल विद्युत परियोजना बनाई गई। विष्णु प्रयाग बांध, अलक नंदा एवं भागीरथी नदियां वहां मिलती हैं जहां विश्व प्रसिद्ध फूलों की घाटी के पास लगाई जानी थी। उत्तर प्रदेश सरकार ने ये दावा किया कि यह उत्तर भारत का औद्योगिक, कृषि एवं घरेलू ऊर्जा की मांग को पूरा करने के लिए विद्युत का एक बड़ा केन्द्र बन जाएगा। लगभग दस लाख रुपए खर्च करके जल्दी-जल्दी में यह योजना शुरु की गई।

लेकिन चिपको पर्यावरणविद् चंडी प्रसाद भट्ट को ग्रेग्सेसे पुरस्कार में जो राशि मिली थी, उससे उन्होंने चमोली के पास अपना दशोली ग्राम विकास आश्रम स्थापित कर दिया था। बांध के लिए हाइड्रोलिक इंजीनियरों, भूगर्भशास्त्रियों एवं पर्यावरण वैज्ञानिकों ने उक्त परियोजना का

पर्यावरण पर घातक प्रभाव पड़ने की रिपोर्ट दी और कहा कि बांध बनने से पारिस्थितिकी प्रणाली पर क्षेत्र में घातक प्रभाव पड़ेगा। साथ ही क्षेत्र के दुर्लभ प्रजाति के पौधों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाएगा। बांध के खिलाफ उत्तर प्रदेश सरकार एवं केन्द्र सरकार को एक समिति ने अपना विरोध प्रगट किया। विरोध के स्वर तत्कालिन प्रधानमंत्री तक पहुँचे और परियोजना से पर्यावरण की भारी क्षति को देखते हुए प्रधानमंत्री ने इस योजना को बंद करवा दिया।

8.8 काजेकिट्र्क्स और राजनैतिक सोच

अमेरिका की एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी कांजेन्ड्रिक्स एनर्जी इन्हापरिटेड, कर्नाटक के दक्षिण कन्नड़ क्षेत्र में मेंगलोर पॉवर कम्पनी स्थापित करना चाहती थी। यह पश्चिमी घाट के वर्षा वाले जंगलों के पास स्थित थी। यह भी महाराष्ट्र में एनरॉन द्वारा स्थापित की जाने वाली ऊर्जा परियोजना की तरह थी।

इस योजना को स्थापित करने को लेकर एक तरफ पर्यावरण और विकास का मुद्दा उछला तो दूसरी तरफ आम जनता, पर्यावरणविदों की स्वयं सेवी संस्थाओं, भारत सरकार और अन्तर्राष्ट्रीय एक निजी संस्थान के बीच वाद-विवाद पैदा हुआ। इस संस्थान को पर्यावरण क्लीयरेन्स या पर्यावरण की दृष्टि से हरी झंडी दिखाना मुख्य मुद्दा रहा। यह ऊर्जा संयन्त्र पाल्क्क घाटों के आगे वनस्पति की विविधता वाले विश्व के 18 क्षेत्रों के पास स्थित था। इस संयन्त्र से बहुत ही संवेदनशील जलीय, भूमि आदि की पारिस्थितिकी पर बुरा असर होने की सम्भावना थी लेकिन सरकारी स्तर पर विद्युत की कमी को पूरा करना और विकास का मुद्दा छाया रहा और इस संवेदनशील पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय विनाश की बात गौण कर दी गई।

इसी तरह कर्नाटक सरकार ने दक्षिण कन्नड जिले में पारिस्थितिकी की दृष्टि से सवेनशील क्षेत्र में 30 से अधिक उद्योग लगवाने एवं मेगलोर रिफायनरी एण्ड पेडोकेमिकल लि. स्थापित करने जैसे कदम उठाए। यह सब राजनैतिक लाभ के लिए किया गया। उद्योग एवं अन्य, प्रकार के प्रदूषित तत्वों के निष्कासन से स्थानीय जलस्रोत प्रदूषित हुए और मछली व्यवसाय पर कुप्रभाव पड़ा।

इसी तरह विकास की तुलना में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी की बलि देने का एक अन्य उदाहरण 1972 में कर्नाटक के घरवाड़ जिले में तुंगभद्रा नदी के किनारे हरिहर पोलिफायबर की स्थापना करने का मुद्दा है। घारवाड में समाज परिवर्तन समुदाय की ओर से एस.आर. हीरेमा ने जनहित में सर्वोच्च न्यायालय में वाद दायर किया।

8.9 बेलियडिला विवाद

नेशनल मिनरल डेवलपमेंट कापरिशन ने मध्य प्रदेश के बस्तर आदिवासी क्षेत्रों में 1968 में एक बड़ी योजना शुक की। बेलियडिला श्रेणी कच्चे लोहे के भंडार के रूप में जाना जाता था और यहां समृद्ध वन क्षेत्र था। सरकार ने यह ग्रामीण एवं दावा किया कि इस परियोजना से रोजगार के अवसर बढ़ेंगे और इस पिछड़े इलाके के विकास होगा। इस दावे के साथ पर्यावरण जंगल साफ किए गए और आदिवासियों की जमीन अधिग्रहित की गई।

शुरु मे स्थानीय आदिवासियों को खदानो में कुछ काम मिला लेकिन लौह उद्योग में जापान में मंदी के कारण इस धातु की मांग में कमी आई। लगभग 7000 आदिवासी बेकार घोषित कर दिए गए।

इस परियोजना से निकलने वाले प्रदूषित पदार्थो से इन्द्रावती नदी का जल प्रदूषित हुआ। आदिवासियों में सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हुई इसके विरोध के स्वर संसद तक पहुंचे। इसी तरह देश के विभिन्न भागों में विकास योजनाऐं और उद्योग लगाने से पर्यावरण का भारी विनाश हुआ और स्थानीय जनता ने आन्दोलन किए। गुजरात के सुरेन्द्र नगर में मरणीया काम्पलेक्स की 1300 एकड़ रसायन उत्पादन प्रदूषण के लिए स्थापित परियोजना के प्रदूषण का आस पास के गांवों के कुंओं एवं जल स्रोतों का पानी होने से 1996 में जन आन्दोलन हुआ।

8.10 वन्य जीवन एवं वनों की रक्षा के लिए अन्य प्रमुख आन्दोलन

पर्यावरण एवं मानव अधिकारों के लिए कार्य करने वाले कई कार्यकर्ताओं ने स्थानीय समुदायों एवं आदिवासियों को साथ लेकर वन्य' प्राणियों को बचाने के लिए भी कई प्रयत्न एवं आन्दोलन किए। 1995 में 'जंगल जीवन बचाओ यात्रा' भी एक ऐसा ही प्रयास था। इसमें 35 गांवों के ग्रामीण, पर्यावरण कार्यकर्ता एवं पर्यावरण शोधकर्ता शामिल थे। इन कार्यकर्ताओं ने पशिमी एवं केन्द्रीय भारत में स्थित 18 राष्ट्रीय पार्को एवं अभयारण्यों की यात्रा की। इन पार्कों एवं अभयारण्यों के आसपास रहने वाले स्थानीय समुदायों एवं वन विभाग के कर्मचारियों आदि के साथ संवाद किया। इन्होंने इस बात पर बल दिया कि वन्य जीवों के लिए जंगलों की तेजी से कमी होती जा रही है और वन्य जीव संरक्षण के लिए कानूनों के बावजूद वन्य जीवन में कमी आ रही है। इस यात्रा के दौरान वन्य जीवन संरक्षण के लिए वनवासियों की भूमिका एवं वन्य जीवों से उनके द्वारा अपनी रक्षा आदि के उपायों पर भी विचार हुआ। वनों तक परम्परागत रूप से आस-पास रहने वालों की पहुँच में कमी की उन्होंने शिकायत की। लेकिन स्थानीय प्राकृतिक स्रोतों के संवर्द्धन एवं प्रबंधन में अपनी भागीदारी निभाने के लिए भी तैयार हुए।

लेकिन वनों के आस-पास के लोग सरकार की वन्य जीवन के संरक्षण के लिए उनके परम्परागत वन स्रोतों तक पहुँच नहीं होने देने के कारण नाराज थे। वन्य जीवन का पर्यटकों की रुची पूरी करने के लिए व्यावसायिक उपयोग करने के प्रति भी वो नाराज थे।

8.10.1 चिलिका आंदोलन

लगभग 1000 किलोमीटर में फैला चिलिका, उड़ीसा में एशिया का सबसे बड़ा जलाशय क्षेत्र है। जहां 158 प्रकार की प्रजातियों के माईग्रेटिंग पक्षियों का स्थल है। आसपास के 192 गांवों के लोगों की आयु का स्रोत भी यह स्थान है। 50 हजार से अधिक मछुआरे एवं दो लाख की आबादी अपनी जीविका के लिए इस पर निर्भर है। चिलिका क्षेत्रों में सदियों से लोगों का मछली पालन करना ही मुख्य धन्धा रहा है। मछली पालन करना ब्रिटिश काल से पूर्व ही उनका अधिकार रहा। मछली उत्पादन, ग्रामीण, सहकारिता आजादी से पूर्व से ही वहां का इतिहास रहा। पारिस्थितिकी दृष्टिकोण से जलसंग्रह एवं सूर्य की ऊर्जा के लिए यह स्थान उपयुक्त रहा है।

जल में मछलियों के लिए भोजन एवं धरती पर पशुओं के लिए विपुल चारा उत्पादन यहां प्रकृति की देन है। जहां जीवन की एक संतुलित प्रणाली रही।

1977-78 में इस क्षेत्र में मछली उत्पादन के विकास एवं निर्यात का धन्धा चला। व्यापारियों, बिचौलियों, राजनीतिज्ञों, सरकार आदि ने इस क्षेत्र को धन कमाने का विकास के नाम पर एक साधन समझ लिया। 1986 में जी.बी. पटनायक सरकार ने उड़ीसा सरकार एवं टाटा समूह की एक संयुक्त कम्पनी को चिलिका क्षेत्रों में 1400 हेक्टेयर महत्वपूर्ण भूमि लीज पर दे दी। मछुवारों ने इसका विरोध किया लेकिन राजनैतिक उठा पटक में कम लागत का उच्च कुशलता वाला और संतुलित निलिका पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय माहौल का विनाश कर दिया गया।

1991 में 192 गांवों के मछुवारों ने विकास के तौर तरीकों का भारी विरोध किया क्योंकि विकास के नाम पर व्यावसायियों, राजनैतिज्ञो ने क्षेत्र का शोषण किया और पारिस्थितिकी एवं गरीबों की रोजी-रोटी छीनी। लोगों ने चिलिका बचाओ आन्दोलन किया। उत्कल विश्वविद्यालय के छात्रों ने क्रांति दर्शिनी युवा संगम का निर्माण किया एवं आन्दोलन किया। आखिर उड़ीसा सरकार को दिसम्बर, 1992 में टाटा समूह के साथ किए गए लीज समझौते को रद्द करना पड़ा। यद्यपि यह पारिस्थितिकीय रक्षा के लिए किया गया लगभग एक साल का संघर्ष था लेकिन गांधी जी के सत्याग्रह सिद्धान्तों के अनुरूप किया गया भारत मैं पर्यावरणीय एक शान्त और सफल आन्दोलन सिद्ध हुआ।

8.10.2 नर्मदा परियोजना आन्दोलन

नर्मदा नदी परियोजना जो पश्चिम भारत के चार बड़े राज्यों से संबंधित है पर्यावरणीय आन्दोलनों एवं राजनैतिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। इस परियोजना के सन्दर्भ में पारिस्थितिकीय विवाद इतना बढ़ा कि इसमें राजनैतिक स्तर से लेकर छोटा से छोटा पर्यावरण कार्यकर्ता शामिल हुआ।

सरदार सरोवर परियोजना एक बहुउद्देशीय अन्तर्राजीय बड़ा बांध नर्मदा नदी पर गुजरात में बनाया जा रहा है। नर्मदा, भारत की पांच महानदियो में से एक है। नर्मदा घाटी परियोजना पर दो बड़ी योजनाएं रही है- जिसमें सरदार सरोवर के अलावा मध्य प्रदेश में स्थिति नर्मदा सागर परियोजना भी सम्मिलित है। नहरों का दुनिया में सबसे लम्बा जाल इसके माध्यम से बिछाने की योजना बनाई गई। बांध के अन्तर्गत 37,000 हेक्टर भूमि डूब में आएगी। इसमें 11,000 वन क्षेत्र सम्मिलित है। इसके अन्तर्गत 248 गांव उजड़ जाएंगें (19 गुजरात, 36 महाराष्ट्र में 193 मध्य प्रदेश में)।

गुजरात भारत में जल की कमी वाले क्षेत्रों में प्रमुख क्षेत्र है। इस परियोजना के आलोचक इसे परियोजना को दुनिया में पारिस्थितिकीय विनाश की मानव क्षरा तैयार सबसे बड़ी विनाश योजना मानते हैं।

वित्तीय, सामाजिक एवं पर्यावरणीय आधार पर सरदार सरोवर एवं नर्मदा परियोजनाएं भारी आलोचना का शिकार रही। सरदार सरोवर का मसला गुजरात उच्च न्यायालय एवं सर्वोच्च न्यायालय तक पहुँचा। मेधा पाटकर के नेतृत्व में आदिवासियों के लेकर नर्मदा बचाओ आंदोलन

चला। बांध के चपेट में आने वालों को विस्थापित करने के मामले ने भी तूल पकड़ा। जब केन्द्र एवं राज्य सरकार इस मसले को हल करने में संलग्न. थी तो 1980 के दशक में नर्मदा परियोजना से पर्यावरण की हानि का मुद्दा लेकर पर्यावरण कार्यकर्ता इस परियोजना के खिलाफ खड़े हो गए।

अमरिका में भी एन्वायरमेन्ट डिफेन्स फण्ड एवं दो स्वयंसेवी संस्थाओं ने वहां की सीनेट उपसमिति के सामने नर्मदा परियोजना का विरोध किया एवं वहां के पर्यावरणविदों ने विश्व बैंक पर इस परियोजना को वित्तीय सहायता बंद करने का दबाव डाला। मध्यप्रदेश में सितम्बर, 1989 में हरसुद नामक स्थान पर पर्यावरण के क्षेत्र में कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं महिलाओं आदिवासियों सहित लगभग 200 स्वयंसेवी संस्थाओं एवं 45,000 लोग इस सम्मेलन में शामिल हुए। पर्यावरण के विनाश को रोकने के लिए इस सम्मेलन में सबसे बड़ा विरोध किया गया है। पर्यावरण बचाव के लिए ये दुनिया का एक बहुत बड़ा सम्मेलन था। इस सम्मेलन ने पर्यावरण की कीमत पर किए जाने वाले विकास को विनाश की संज्ञा दी। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसके बारे में समाचार और रिपोर्ट छपी।

मेघा पाटकर एवं अन्य पर्यावरण कार्यकर्ताओं की संस्थाओं ने विस्थापितों की समस्या के अलावा पर्यावरण को प्रमुख मुद्दा बनाया। मध्यप्रदेश में बाबा आमटे एवं मेधा पाटकर ने इस परियोजना के खिलाफ अपना संघर्ष जारी रखा। 1990 में नर्मदा बचाओ आन्दोलन ने भी जोर पकड़ा। जिसे गुजरात में बांध बनाने की हिमायत करने वाले लोग भी सामने आए।

इस प्रकार गुजरात और मध्यप्रदेश में राजनैतिक उथल पुथल और पर्यावरणीय आंदोलन के विभिन्न रूपों को प्रदर्शित करने वाला सबसे लम्बा चला सरोवर सागर एवं नर्मदा बांध का मुद्दा रहा। सरदार सरोवर परियोजना का, जिसे दुनिया में सबसे अधिक लागत वाली परियोजना माना जाता है, निर्माण कार्य रोक दिया गया था और मामले को सुप्रीमकोर्ट को सौंप दिया गया था। उधर निर्माण कार्य में विलम्ब के कारण लागत बढती गई। छह साल की अदालती बहस के बाद अब उच्चतम न्यायालय ने निर्माण कार्य जारी रखने के पक्ष में फैसला दिया है। इससे पर्यावरणवादियों को भारी झटका लगा है।

उच्चतम न्यायालय ने 90 मीटर ऊंचाई तक बांध के निर्माण की इजाजत दी। उसका कहना है कि उसे प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभाव के सबूत नहीं मिले हैं। उसने यह भी कहा कि पुनर्वास का काम ठीक से होता दिख रहा है। उसने बांध की ऊंचाई में और अधिक वृद्धि को पर्यावरणीय प्रभावों की नियमित समीक्षा और राहत तथा पुनर्वास पैकेज से जोड़ दिया। मेघा पाटकर का इस संदर्भ में कथन है- 'फैसला जन विरोधी और संविधान की भावना के खिलाफ है''।

810.3 पारिस्थितिकीय कार्यदल

वनों की रक्षा के लिए आदिवासियों ने जिस प्रकार आंदोलन किए वैसे ही दक्षिण बिहार में सेवानिवृत सैनिकों ने पर्यावरण के विनाश की समस्या से जुड़ने के लिए एक. पारिस्थितिकीय कार्यदल या 'फोर्स' तैयार की। इसमें सेवानिवृत सैनिकों को भर्ती किया गया। इस दल का कार्य वृक्ष लगाना, छोटे-छोटे बांध बनाकर मिट्टी का कटाव रोकना आदि रहा। राजस्थान में भी मिट्टी

के टीलों को एक जगह स्थाई बनाए रखने के लिए इस तरह का कार्यदल है जिसके द्वारा खर्च की गई लागत डिफेन्स बजट में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा की जाती है। राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात आदि में पर्यावरण के लिए कार्यरत कई ऐसी संस्थाऐं हैं जिन्होंने पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। स्थानीय स्तर पर वनों एवं पर्यावरण को बचाने से ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को स्वास्थ्य एवं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा आय बढने के जो लाभ हुए, उनके कारण अनेक पर्यावरण के क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संस्थाऐं सफल रही है एवं उनकी उपलबिधयो से अनेक लोगों ने प्रेरणा ली है।

8.11 पर्यावरण क्रान्ति

वास्तव में भारत में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के संरक्षण के लिए विभिन्न प्रदेशों में आयोजित आन्दोलनों की कड़ी में हिमालय क्षेत्र के गढ़वाल जिले में आयोजित 'चिपको आन्दोलन' उत्प्रेरणा का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण उदाहरण बन गया जिसने देश में अनेक पर्यावरणीय आन्दोलनों को गति दी। 'चिपको आन्दोलन' 1973 में शुरु हुआ। यह लगभग बीस साल से भी ज्यादा समय तक जारी रहा। यह आन्दोलन विकास की अवधारणा और सरकार के रवैये के खिलाफ पहाड़ी लोगों का बड़ा संघर्ष था। इस संघर्ष में कई मुद्दे जुड़ते गए और इसने कई रूप ग्रहण किए। सरकार से किसी जमाने में डरने वाले गिरिजनों एवं महिलाओं द्वारा अपनी शक्ति को समझने एवं उसका प्रदर्शन करने की एक प्रक्रिया थी।

यह आन्दोलन शुरु में उन ठेकेदारों के खिलाफ था जो व्यावसायिक दोहन के लिए जंगलों का सफाया कर रहे थे। इसके बाद 'चिपको आन्दोलन' ने यह मांग रखी कि स्थानीय स्रोतों पर स्थानीय समुदाय का अधिकार होना चाहिए और वन प्रबंधन में उनकी भागीदारी होनी चाहिए। पर्यावरण के लिए समर्पित सुन्दरलाल बहुगुणा ने वनों के संवर्द्धन पर बल दिया तथा चण्डी प्रसाद भट्ट ने स्थानीय प्राकृतिक स्रोतों का प्रबंधन गिरिजनों को देने की मांग रखी। बाद में स्थानीय प्राकृतिक स्रोतों के मालिक स्थानीय लोगों को होना चाहिए और उन्हें उनका उपयोग करने की भी छूट होनी चाहिए, यह मांग भी जुड़ गई। इस आन्दोलन में महिलाओं, गिरिजनों एवं गरीबों की महत्वपूर्ण भागीदारी रही। इस प्रकार इस पारिस्थितिकीय आन्दोलन के कर्णधारी पिछड़े वर्ग के साथ मुख्य रूप से महिलाओं ने भूमिका निभाई।

चिपको आन्दोलन एक इतना सशक्त आन्दोलन था जिसने 'एप्पिको', विष्णु प्रयाग, टेहरी बांध एवं नर्मदा जैसे आन्दोलनों को प्रेरित किया। चिपको आंदोलन की सफलता और शक्ति की जड़ें हिमालय क्षेत्र संचालित गांधीवादी विचारों के केन्द्रों में जमी थी। जहां सरला देवी बहुगुणा एवं राधादेवी ने ऐसे कार्यकर्ता तैयार किये थे जो प्रकृति का सम्मान करने और मनुष्य एवं प्रकृति के बीच संयोजक के संबंधों का प्रचार करते थे। सुन्दलाल बहुगुणा एवं चंडी प्रसाद भट्ट ने व्यावसायिक एवं उपभोक्ताओं हितों के लिए प्रकृति का दोहन करने के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने आधुनिक नगरीय एवं औद्योगिकी सभ्यता के वर्चस्व एवं उनके विकास की अवधारणा के खिलाफ सवाल उठाए। इस प्रकार भारत में आम आदमी को प्रकृति एवं पारिस्थिस्तकीय को बचाने के लिए प्रेरित करने वाला ये आंदोलन भारत के पर्यावरणीय आंदोलन में एक इतिहास बन गया।

'चिपको आन्दोलन' एक अनूठा आंदोलन था। जो दो दशक तक अहिंसात्मक ढंग से हजारों पहाड़ी निवासियों ने संचालित किया। इस आन्दोलन में महिलाओं ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। पारिस्थिस्तकी एवं पर्यावरण आन्दोलन को नई भाषा एवं सम्प्रेषण प्रदान किया। इस आंदोलन में एक अटूट विश्वास की 'भावना थी। घर के पुरुष सदस्यों के बाहर काम पर जाने के बावजूद आंदोलन को गति देने में महिलाएं सक्रिय रही। इसने देश के अन्य आंदोलनों को एक नई दिशा और सोच दी।

ग्रामीण महिलाओं के अधिक से अधिक यह चेतना जगानी होगी कि चिपको' जैसे आंदोलन अब अतीत की चीज समझी जाए। ग्राम पंच महिलाएं स्वयं आये आकर अपनी ताकत को पहचाने और हर बात में पदों की ओर न देखकर' स्वयं इस ओर पहल करे।

8.12 सारांश

देहरादून के पास खारिकोट से लाईम स्टोन के लिए भूमि के उपयोग से पैदा हुआ सघंर्ष उड़ीसा, मध्य प्रदेश में सिंगरोली एप्पिको कनार्टक में जल पक्षी परियोजना रोम में पचतारा मनोरजंन केन्द्र या केकंण रेलवे जैसी अनेक योजनाओं एवं विकास के लिए तैयार की गई।सिचाई मादनिग औद्योगिक विकास योजनाओं ने अनेक सामाजिक पारिस्थितिकीय एवं पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न की। उनमें अधिकांश परियोजनाओं ने महिलाओं आदिवासियों पवर्तवासियों के जीवन पर सीधा प्रभाव डाला। इन योजनाओं ने उन प्राकृतिक स्त्रोतों मे बाधा डाली जो स्थानीय इन लोगों के अस्तित्व का आधार थी। कई बड़ी योजनाओं के आदिवासी समुदाय पर पड़े कुप्रभाव के कारण इन समुदायों में आक्रोश पैदा हुआ और वे आंदोलन के लिए आपस में एकजुट हुए बड़े- बड़े बाधकों नदी परियोजनाओं वन प्रबधंन एवं भू विकास की योजनाओं ने बड़े- बड़े आंदोलनों को जन्म दिया और भारत में पारिस्थितिकीय बहस छिडी।

बेडचि ड़बमपल्ली एवं नर्मदा जैसी परियोजनाओं ने पश्चिम एवं टेहरी एवं विष्णु प्रयाग जैसी योजनाओं के उत्तर में तुगंभद्रा एवं घाटप्रवाह ने दक्षिण मे तथा गडक एवं कोईलकारो योजनाएं पूर्व में ऐसी बडी योजनाएं थी जिन्होंने पारिस्थितिकीय विवादों को जन्म दिया। दक्षिण में शांत घाटी से उत्तर में फूलों की घाटी तथा पश्चिम में काकरा पार्क अणुसयतर से पूर्व मे चिलिका झील' बड़े बाधा की खिलाफत या पर्यावरणीय आंदोलनों ने प्रभावित लोगों के साथ न्याय करने बाधा की डिजाड़नू वनों अभ्यारण्यों' वन्य जीवन दुलर्भ प्रजातियों वनस्पति की विविधता आदि के विनाश जैसे कई पर्यावरणीय मुद्दे खड़े किए।

इस मामले में फ्रेण्डस ऑफ दी अर्थ एन्वायरमेंन्ट डिफेनस फण्ड जैसी अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण संस्थाऐ एवं भारत में कार्यरत स्वयंसेवी संस्थाओं ने तक सरकारों एवं भारत सरकार पर दबाव भी डाला कि के विकास योजनाऐं तैयार करते समय पर्यावरण के मुद्धे को पूरी एहमियत दें। आम जनता के आन्दोलनों एवं नमर्दा टेहरी चिपको जैसे आन्दोलनों के अलावा केरल' मध्यप्रदेश' बिहार और हिमालय क्षेत्र में पैदा हुए पर्यावरणय आंदोलनों ने सरकार को विकास के संदर्भ में सोचते समय पर्यावरण से जुड़े मुदों को भी प्रमुखता देना शुरू किया। सरकार ने अनुभव किया कि विकास में विविध स्तरों पर स्थानीय समुदायों की भागीदारी जरूरी है।

विकास की गतिविधियों की अवधि में एतिहासिक दृष्टि से भारत चीन श्रीलका दक्षिण पुर्व के एशिया के देशों में यह अनुभव किया गया कि विकास का मुद्रा जनभागीदारी के साथ अकेन्द्रीयकृत होना चाहिए क्योंकि यह सभी देशों का अनुभव रहा कि विकास योजनाओं से स्थानीय समुदायों का परम्यरागत जीवन प्रभावित हुआ और विकस उन्हें आत्मनिर्भर एवं प्रकृति का साथी बने रहने में मदद नहीं कर सका। भारत में पंचायत राज के द्वारा आम जनता की पर्यावरणय स्त्रोतो के संरक्षण में भागीदारी के प्रयास किए गए लेकिन ये प्रयत्न व्यावहारिक स्तर पर अधिक सफल नही हुए

दरअसल भारत में पर्यावरणय आंदोलनों के पीछे महिलाओं वनवासियों और गरीबों की आवाज रही जो वनों एवं पर्यावरण के परम्परागत स्त्रोतो के विनाश से सीधे प्रभावित हुए और जिसने उनके अस्तित्व को खतरा पैदा किया। भले ही यह आंदोलन अपने उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्ण सफल न रहे हों लेकिन इन आंदोलनों ने विकास के सरकारी सोच को प्रभावित करने एवं देश में पर्यावरण के प्रति जाग्रति पैदा करने की अहम भूमिका निभाने में गहरी सफलता पाई।

8.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. पर्यावरणीय आन्दोलनों ने भारत में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकीय संरक्षण में क्या भूमिका निभाई? विवेचना कीजिए।
2. साईलेन्ट वेली में हुए पर्यावरणीय आन्दोलन के महत्व को रेखांकित कीजिए?
3. भारत में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकीय मुद्दों को लेकर हुए विभिन्न आन्दोलन का क्या प्रभाव पड़ा? प्रकाश डालिए।
4. पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्द्धन में 'चिपको आन्दोलन' का महत्व प्रतिपादित कीजिए। इसे पर्यावरणीय आन्दोलनों का जनक क्यों माना जाता है?
5. 'एप्पिको' आन्दोलन पर प्रकाश डालिए? इस आंदोलन के उदय होने के कारण लिखिए।
6. भोपाल गैस त्रासदी से भारत ने औद्योगिक विकास या विकास के सन्दर्भ में नीति निर्धारित करते समय क्या सबक सीखा? अपने विचार व्यक्त कीजिए।
7. टेहरी बांध एवं विष्णुप्रयाग बांधों के निर्माण का विरोध क्यों हुआ? '।विस्तार से प्रकाश डालिए।
8. भारत में विभिन्न मुद्दों को लेकर आयोजित किए गए पर्यावरणीय आन्दोलनों का क्या नतीजा रहा? क्या ये मुद्दे अपने उद्देश्य पूर्ति में सफल रहे? आलोचना कीजिए।
9. भारत में पर्यावरण एवं पारिस्थिकयि संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए कोई ठोस मार्ग सुझायें?
10. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए
    1. मेधा पाटकर
    2. सुन्दरलाल बहुगुणा
    3. चंडी प्रसाद भट्ट
    4. अरुधति राय
    5. राजेन्द्र सिंह (पानी बचाओ आंदोलन)

8.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Pravin Sheth (1997) Environmentalism: Politic Ecology & Development, Rawat publications, jaipur & New Delhi.
2. B. pramod & N. Murai Balal,(1991) Susteeinable Development of the Raral poor, Himalayan Publishers, Bombay.
3. Geeti Sen (Ed.) Indigenous Vision people of India attitude to Environment, Sage publications, New Delhi 1992.
4. Chandi Prasad Bhatt (1980) Ecoo System of the Central Himalayas and Chipko Movement, Gopeswar, U.P.
5. UNDP, Human Development Reports, 1994, 1995, 1996
6. Devindra Sharma, "Saving wild life" The Times of India, 3rd Aug, 1996.
7. Renu Khator " Organizational response to the Environment Crisis in India journal of political Science jan 1988.
8. कुरुक्षेत्र मई, 2000, अक्टूबर, 2001, अगस्त 2001
9. शुक्रदेव प्रसाद - पर्यावरण और हम, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली- 6

विश्वविद्यालय द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों की सूची

पाठ्यक्रम का नाम		अवधि
1.	स्नातक उपाधि प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
2.	भोजन एवं पोषण में सर्टिफिकेट	6 माह
3.	कम्प्यूटर ज्ञान एवं प्रशिक्षण का प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
4.	सर्टिफिकेट इन कम्प्यूटिंग	6 माह
5.	पंचायती राज प्रोजेक्ट में प्रमाण-पत्र	6 माह
6.	संस्कृति एवं पर्यटन में प्रमाण-पत्र	6 माह
7.	महिलाओं में वैधानिक बोध में प्रमाण-पत्र	6 माह
8.	राजस्थानी भाषा एवं संस्कृति में प्रमाण-पत्र	6 माह
9.	बी.ए.एफ./बी.सी.एफ. (त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम)	1 वर्ष
10.	एम.ए.(अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, इतिहास, हिन्दी)	2 वर्ष
11.	एम.बी.ए.	3 वर्ष
12.	पी.जी.डी.एच.आर.एम.	1 वर्ष
13.	पी.जी.डी.एफ.एम.	1 वर्ष
14.	पी.जी.डी.एम.एम.	1 वर्ष
15.	पी.जी.डी.एल.एल.	1 वर्ष
16.	टी.एच.एम.	1 वर्ष
17.	डी.एन.एच.ई.	1 वर्ष
18.	डी.सी.ओ.	1 वर्ष
19.	डी.एल.एस.	1 वर्ष
20.	डी.सी.सी.टी.	18 माह
21.	बी.जे.(एम.सी.)	1 वर्ष
22.	एम.जे.(एम.सी.)	2 वर्ष
23.	बी.लिब.	1 वर्ष
24.	पर्यावरण विज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा	1 वर्ष
25.	बी.एड.	2 वर्ष
26.	पी.एच.डी.	3 वर्ष
27.	पी.जी.डी.ई.एस.डी.	1 वर्ष